ओइम् आयुर्यज्ञेन कल्पताम्

यज्ञ प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के योग मुद्रा में दिए प्रवचनों के आधार पर

प्रकाशक :
वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी०)
साईट १/३१४, विकास पुरी, नई दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ५५१६७०३

[illegible]

ओ३म् आयुर्यज्ञेन कल्पताम्

यज्ञ प्रसाद

अर्थात्

यज्ञ का महत्व

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों द्वारा

द्वितीय संस्करण दिसम्बर 1990 — 2000

सम्पादक : आचार्य लक्ष्मी नारायण जी चतुर्वेद, एम० ए०
साहित्याचार्य, विद्याभास्कर, आयुर्वेद भास्कर

प्रकाशक :

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी०)

साईट १/३१४, विकासपुरी, नई दिल्ली-११००१८

दूरभाष : ५५६६७०३ मूल्य : बारह रुपए

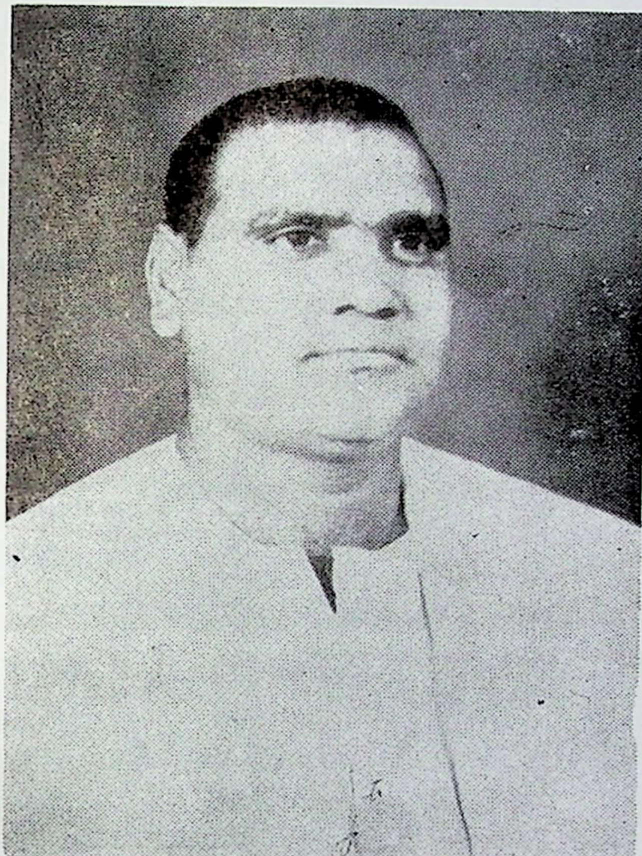
ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी की लघु जीवनी

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज पुनर्जन्म के साक्षात् प्रमाण हैं। इनका जन्म १९४१ में जिला गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) में मुराद नगर के समीप खुर्रमपुर सलेमाबाद नाम के ग्राम में हुआ। आर्थिक समस्या के कारण परिवार इनकी शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं कर सका और बचपन से ही इन्हें शारीरिक श्रम से जीविका उपार्जन में लगा दिया। आत्मा में संचित पूर्व जन्म के संस्कारिक ज्ञान के कारण ब्र० जी बचपन से प्रवचन करने लगे। सीधे लेटने के कुछ देर बाद ही समाधि में चले जाते, हाथ छाती के ऊपर जुड़ जाते, गर्दन दायें-बायें हिलने लगती और प्रवचन शुरू हो जाता। परिवार ने इसे मानसिक विकार समझकर प्राचीन तरीकों से उपचार भी करवाया। पन्द्रह वर्ष की आयु में ब्र० जी ने घर त्याग दिया। घूमते-घूमते बरनावा पहुंचे। जहां के लोगों ने इनके प्रवचन बड़ी श्रद्धा से सुने।

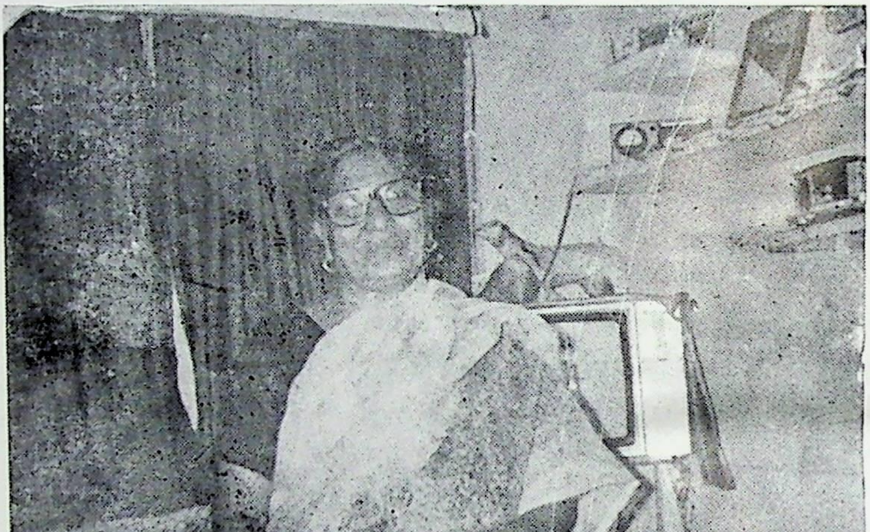
अथाह ज्ञान के भण्डार, आध्यात्मिक जगत की महान विभूति, जन्म जन्मान्तरों के शृंगी ऋषि की आत्मा ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज इस अज्ञानता के युग में वैदिक संस्कृति का पुनः उत्थान करने में लगे हुए हैं। भारतवर्ष के विभिन्न भागों में प्रति वर्ष सैकड़ों यज्ञ करवाते हैं। इनके योग की अनूठी क्रिया है। इसे योग में पारंगत व्यक्ति ही समझ सकता है। साधारण व्यक्ति के लिए यह एक अचम्भा है। ब्रह्मचारी जी योग मुद्रा में अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से पृथक् कर लेते हैं। जब सूक्ष्म शरीर का पृथक्करण होता है तो स्थूल शरीर समाधि अवस्था में चला जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों शरीरों के मध्य सदा सम्बन्ध बना रहता है परन्तु प्राणों के संघात के कारण गर्दन शीघ्रता से दाएं-बाएं हिलती रहती है। यह अपने सूक्ष्म शरीर को अन्तरिक्ष स्थित सूक्ष्म शरीर धारी आत्माओं के मध्य ले जाते हैं और विभिन्न विषयों पर सारगर्भित वैदिक प्रवचन करते हैं। इन्होंने अपने प्रवचनों में अनेक अलंकारिक गुत्थियों एवं ऐतिहासिक तथ्यों की वास्तविक व्याख्या भी की है।

योगमुद्रा में पूज्य ब्रह्मचारी जी का स्थूल शरीर यन्त्र का कार्य करता है। अतः इनके लाखों वर्षों पूर्व के शिष्य ऋषि महानन्दजी (सूक्ष्म शरीर धारी) भी इनके स्थूल शरीर द्वारा कभी-कभी अन्तरिक्ष से सभी युगों का आंखों देखा हाल वर्णन करते हैं।

वैदिक अनुसंधान समिति (रजि०) नई दिल्ली-१८



ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज



श्रीमती दुर्गा देवी धर्म पत्नी स्व0 ला0 सिरीराम
रामा मण्डी भटिंडा

धन्यवाद एवं शुभशंसा

श्रीमती दुर्गा देवी जो रामा मंडी (भटिंडा, पंजाब) निवासी स्वर्गीय लाला सिरीराम बंसल जी की धर्म पत्नी हैं। आप बहुत धार्मिक विचारों और सरल प्रवृत्ति की हैं और भारतवर्ष के लगभग सारे तीर्थ स्थान कर आई हैं। लाला सिरीराम जी किरयाना मर्चैन्ट थे और इनका अच्छा कारोबार था। बड़े धार्मिक विचारों के थे और परमात्मा में पूर्ण विश्वास रखते थे। इनके चार सन्तान, तीन सुपुत्र, तथा एक सुपुत्री जिसका संस्कार फरीदकोट (पंजाब) के एक उच्च घराने में हुआ है। दो सुपुत्र श्री प्रेम कुमार बंसल, श्री कृष्ण कुमार बंसल, चार्टर्ड अकाऊंटेन्ट हैं और सबसे बीच वाले श्री राजेन्द्र कुमार बंसल व्यापार करते हैं। ये सब ब्रह्मचारी जी महाराज के अगाध श्रद्धालु हैं और सबसे बड़े वाले तो ब्रह्मचारी द्वारा स्वस्ती यज्ञ भी करवा चुके हैं और इनके प्रवचनों की पुस्तकें भी पढ़ते रहते हैं। ये सब परिवार ईश्वर में अटूट श्रद्धा रखते हैं।

पाठक समुदाय की बढ़ती रुचि को देखते हुए श्रीमती दुर्गा देवी जी ने यज्ञ महत्व पुस्तक के दूसरे संस्करण की एक हजार प्रतियां छपवाने के लिए पूर्ण प्रकाशन सहायता प्रदान की है। समिति इनका हार्दिक धन्यवाद करती है और परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि इन परिवारों का स्वास्थ्य सदा बना रहे और वेद प्रचार एवं प्रसार में इसी प्रकार इनका सहयोग प्राप्त होता रहे। समिति इनके लिए दैविक और भौतिक सुख प्राप्ति की मंगल कामना भी करती है।

रामसूर्ति शर्मा, प्रकाशन मंत्री
वैदिक अनुसंधान समिति (रजि०) नई दिल्ली-१८

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

पाठक वृन्द !

आपके हाथों में यह "यज्ञ प्रसाद" अर्थात् यज्ञ का महत्व नामक पुस्तक इस बरनावा के यज्ञ की पूर्णाहुति के अवसर पर समर्पित की जा रही है। आप भली प्रकार जानते हैं श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज एक यज्ञ पुरुष के रूप में हमारे मध्य विद्यमान हैं। यज्ञ में उनकी महान् आस्था है। इस पुस्तक में यज्ञ के महत्व के विषय में ब्रह्मचारी जी महाराज ने जो समय-समय पर अनेक प्रवचन दिये हैं तथा जो अनेक पुस्तकों में छप चुके थे उन्हीं का संग्रह एक स्थान पर आचार्य श्री पण्डित लक्ष्मी नारायण जी चतुर्वेद ने किया है। समिति उनका हृदय से धन्यवाद और आभार प्रकट करती है। वैदिक अनुसंधान समिति की ओर से अब तक २५ पुष्पों में श्री ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज के लगभग २०० प्रवचन छप चुके हैं। जिनमें मानव जीवन के कल्याणार्थ कोई ऐसा विषय अछूता नहीं रहा जिसकी आवश्यकता हो। इन प्रवचनों में, धार्मिक मान्यतायें, राजनीति, ऐतिहासिक दृष्टिकोण, गृहस्थ जीवन, वैदिक सिद्धान्त, आत्म परमात्म विवेचन, सामाजिक परम्परायें, योग तथा आध्यात्मिक, वैज्ञानिक उपलब्धियां एवं आलंकारिक दृष्टिकोण सामान्य जीवन क्रम सब पर ही आपने अपने प्रवचनों में विचार प्रकट किये हैं।

वैदिक अनुसंधान समिति ने अपनी बैठक में निश्चय किया कि २५ पुस्तकों तथा अन्य बिना छपे प्रवचनों को विषयानुसार लेकर केवल पांच पुस्तकें तैयार की जायें। जिनमें सब ही उपयोगी साहित्य व प्रवचन आ जायें।

यह यज्ञ का महत्व पहला पुष्प है जो कि आपके समक्ष है। यदि पाठकों एवं ब्रह्मचारी जी के अनुयायियों को यह प्रयत्न लाभकारी लगा तो आगे अन्य विषयों को उन पुस्तकों में से एकत्रित कर दूसरा पुष्प शीघ्र ही आपकी सेवा में समर्पित किया जाएगा।

प्रभु से प्रार्थना कि वह ब्रह्मचारी जी जैसे अनमोल रत्न को हमारे मध्य दीर्घकाल तक रखे। जिससे उनसे नई प्रेरणा और धार्मिक चेतना प्राप्त होती रहे।

स्व० वद्य प्रकाश चन्द्र शास्त्री
प्रचार विभाग
वैदिक अनुसंधान समिति

॥ ओ३म् ॥

शुभ सम्मतियां

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के सम्बन्ध में पूज्यपाद ब्रह्मर्षि योगेश्वरानन्द जी महाराज, (भूतपूर्व बाल ब्रह्मचारी श्री व्यासदेव जी) द्वारा १४-४-६२ को योग निकेतन स्वर्गाश्रम में ब्रह्मचारी जी के दो प्रवचनों के सुनने के पश्चात्

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी से हमारी हिन्दू व आर्य जाति को बड़ा गौरव है। ऐसी महान् आत्मायें हमारे देश में इस युग में होने लगी हैं। इनके व्याख्यान विद्वतापूर्ण हैं। ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी वास्तव में वेद का सुन्दर प्रतिपादन करते हैं इनका उपक्रम उपसंहार विद्वानों की तरह होता है। अब रही योग की दृष्टि, ब्रह्मचारी जी को मेरे पास कुछ काल कुछ दिन, महीनों नहीं, रहने का अवसर मिले तो ठीक निर्णय दे सकूंगा कि योग के साथ इनका क्या सम्बन्ध है। यह किस प्रकार समाहित होकर अपने ज्ञान का प्रसार करते हैं यह हमारे जैसे योगियों के लिए बड़ा गौरव है, क्योंकि समाधि के आधार पर चित्त की एकाग्रता पर नेत्र बन्द करके यह अपने विज्ञान का प्रवचन करते हैं। यह बड़े सौभाग्य की बात है और हमारे आर्य धर्म का प्रचार, हमारी पुरानी संस्कृति का प्रचार है हमें इस बात का बड़ा गौरव है।

———

अन्तर्योगी ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के विषय में स्वामी योगेश्वरानन्द जी महाराज की अप्रैल १९८२ में प्रवचन सुनने के पश्चात्

यह हमारा परम सौभाग्य है कि ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी जैसे योगी अब भी इस भारत की पवित्र भूमि पर विद्यमान हैं। यह प्रभु की उन पर अपार कृपा है।

एक बार ध्यानावस्था में मैंने ब्रह्मचारी जी के समान अपनी गरदन हिलाने का प्रयत्न किया। परन्तु मेरा सर चकरा गया। परन्तु ब्रह्मचारी जी की पूरे प्रवचन के समय में गरदन दाएं-बाएं हिलती रहती है और वाक्य के बोलने में कोई त्रुटि नहीं आती।

जिस प्रकार यह वेद मन्त्रों का स्वर सहित उच्चारण करते हैं वह हमें अपने

पुराने ऋषियों और वेद के ज्ञान की याद दिलाती है। इस प्रकार ब्रह्मचारी जी इस पीढ़ी को अपनी वैदिक संस्कृति का दिग्दर्शन कराते हैं। मुझे कई योगियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं भी समय-समय पर ध्यानावस्था में आध्यात्मिक प्रवचन करता हूं। उस समय मुझे अपने आस-पास का कुछ ध्यान नहीं रहता परन्तु ब्रह्मचारी जी में अपने पूर्व जन्मों के आधार पर कुछ विशेषता है।

उनके प्रवचनों का विषय नित नया होता है। वह अपने विषय में इतना गहरा जाते हैं कि किसी-किसी समय तो वेदों के महान् पण्डित भी उस गहराई तक नहीं पहुंच पाते।

उनके एक प्रवचन में जो योग निकेतन में हुआ था मैंने उनके हाथ और सर को जोर से पकड कर रोकने का यत्न किया परन्तु मैं ऐसा न कर सका और उनका प्रवचन चालू रहा। जैसे कछ भी न हुआ हो।

अन्त में मैं अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर यह कहना चाहता हूं कि ध्यानावस्था में योगी को अपने आस-पास का कोई भास नहीं होतापरन्तु ब्रह्मचारी जी इस अवस्था में भी वैदिक ज्ञान की धारा बहाते हैं।

स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती जी महाराज
(भूतपूर्व आचार्य राजेन्द्र नाथ जी शास्त्री
दयानन्द वेद विद्यालय, नई दिल्ली-११००१६)

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी को वर्तमान जीवन में शिक्षा न मिलने पर भी वैदिक सिद्धान्तों के संस्कारों के आधार पर सम्प्रज्ञात समाधि अवस्था में प्रवचन करते हैं।

वे व्याख्यान के आरम्भ में सहस्रों जनों की भीड़ में आस-पास के नागरिक कोलाहल की विद्यमानता में धारणा अवस्था में पहुंचने के लिए शव आसन" में लेट जाते हैं। बाह्य बाधाओं को रोकने के लिए मुख ढांक लेते हैं। यह आसन पातंजल योग की स्थिर सुखम् आसनम्, २/४६ के आधार पर लगाते हैं।

प्रत्येक विचारशील वेदज्ञ विद्वान महानुभावों से हमारी प्रार्थना है कि ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी की इस अलौकिक घटना पर गम्भीरतापूर्वक मनन करें, विचार करें और किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच कर विश्व को वैदिक पुनर्जन्म, परलोक और योग की विभूतियों कादिग्दर्शन करा दें।

डॉ० रणवीर सिंह शास्त्री, (एए० ए०, पी० एच० डी०)
विद्याभास्कर, वेद आयुर्वेद-व्याकरण, साहित्याचार्य
इन्द्र भवन, १/१३, पंचकुइयां मार्ग, आगरा

अत्यन्त सन्निकट से अध्ययन के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी अशिक्षित होते हुए भी बड़े ही तर्क पूर्ण सारगर्भित, विज्ञान सिद्धान्तों से समस्त वैदिक एवं शास्त्रीय प्रवचनों को शयनावस्था में ओजस्वी भाषा में करते हैं सारे ही प्रवचन और वेद मन्त्र एक-दूसरे से नहीं मिलते, उदाहरण अवश्य ही विभिन्न प्रवचनों में आ जाते हैं। भाषण शैली इतनी युक्ति-युक्त, संस्कृत एवं वैदिक शब्दों से अतिरंजित होती है कि व्युत्पन्न विद्वान् भी इस प्रकार के प्रवचन करने में कम समर्थ हो सकता है यद्यपि इनके पारायण के मन्त्र वर्तमान वेद संहिताओं में नहीं मिलते, परन्तु उच्चारण शैली स्वर ध्वनि आदि की समानता होने से आर्य परम्परा ज्ञात होती है किसी भी शाखा सम्प्रदाय की वैदिक संहिताओं के ये मन्त्र ऐसा ब्रह्मचारी के प्रवचन से ध्वनित होता है, प्रवचन कर्ता की वेदों, यज्ञों और वैदिक संस्कृति पर अगाध श्रद्धा एवं अक्षुण्ण विश्वास है। विश्व के समस्त विज्ञान, धर्म, संस्कृति, विद्या और विभिन्न कलाओं तथा ज्ञान का भण्डार व उद्‌गम भूमि वेद ही है इन विषयों पर प्रवचनों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

——

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के सम्बन्ध में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि
सभान्तर्गत धर्मार्थ सभा के प्रधान गुरुकुल कांगड़ी के
स्नातक, विद्यावाचस्पति श्री पण्डित धर्मदेव जी
विद्यामार्तण्ड

मैंने ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के ११ से १५ जून तक ५ प्रवचन लोधी कालोनी और विनय नगर में सुने। इनसे पूर्व भी एक प्रवचन वर्ण व्यवस्था पर विनय नगर में सुना था। इन प्रवचनों में अद्वैतवाद, मूर्तिपूजा, भूत, प्रेत, जन्म से वर्ण-व्यवस्थादि का निराकरण करते हुए वैदिक सिद्धान्तों को प्रबल समर्थन देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के उस विशेष अवस्था में दिए प्रवचनों को लोग ध्यान से और श्रद्धापूर्वक सुनते हैं। यह हर्ष की बात है, इससे वैदिक धर्म के प्रचार में सहायता मिलेगी।

मेरे विचार में यह माना नहीं जा सकता कि इनको किसी ने रटवा रखा है अथवा यह सब केवल पाखण्ड है। यद्यपि ऐसा कैसे होता है कि एक अशिक्षित प्राय: व्यक्ति ऐसे उत्तम, प्रभावशाली प्रवचन विशेष अवस्था में कर सके, यह मनोविज्ञान तथा योग दृष्टि से विचारणीय बात है, जिस पर पूर्ण अनुसंधान जारी है, तथापि उच्चारण आदि की कुछ त्रुटियों को छोड़कर यह प्रवचन मुझे अति उपयोगी प्रतीत हुए हैं, जिनसे वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि होती है। शेष विषयों पर अनुसन्धान उपेक्षित है।

——

आर्य जगत् में संस्कृत साहित्य के महापण्डित व्याकरण वेदान्त-साहित्य-
आयुर्वेदाचार्य डॉक्टर श्री हरिदत्त जी शास्त्री पंचदशतीर्थ
एम० ए०, पी० एच०, डी० संस्कृत विभागाध्यक्ष
डी० ए० वी० कॉलेज, कानपुर

ब्रह्मचारी कृष्णदत्तः प्राज्ञः सन्नपि प्रज्ञवत्।
यानि प्रवचनान्याख्तः तानि विस्मापकानि मे ।। १ ।।
नह्यत्र कुहना कदाचित्, न दम्भा किन्तु पूर्वजाः।
दशा विशेष संस्कारा, उद्बुध्यन्ते मतं मम् ।। २ ।।

भावार्थ—अशिक्षित होते हुए भी ब्रह्मचारी जी जो प्रवचन करते हैं वह विद्वत्तापूर्ण एवं आश्चर्यजनक है। इसमें न कोई दम्भ है और न पाखण्ड है। विशेष स्थिति पूर्व में जन्म के संस्कार जागृत हो जाते हैं ऐसी मेरी सम्मति है।

——

आवश्यक निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक का प्राक्कथन यज्ञ प्रसाद पुस्तिका के सम्पादक का रच-लिखित है। प्रथम खण्ड से द्वितीय खण्ड तक श्री प्रीतम चन्द विज जी द्वारा सम्पादित "आदि ऋषि ब्रह्मा के शिष्य शृंगी ऋषि की आत्मा कलियुग में" इस नाम की पुस्तक से सधन्यवाद लिया गया है।

सभी पाठकों को इससे ज्ञात हो जायेगा कि महर्षि दयानन्द की मान्यता और ऋषि स्वरूप श्री ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों का परस्पर कितना घनिष्ठ साम्य है।

वस्तुतः पुरातन ऋषि-मुनियों की वैदिक परम्परा के परम पोषक महर्षि के वेद निर्दिष्ट सिद्धान्तों पर मानों आदि सृष्टि के ऋषि अवतीर्ण होकर अपनी निश्चयात्मक विचार चर्चा की मुद्रा लगा रहे हैं।

समस्त पुरातन लौकिक और वैदिक साहित्य अपने अतीत के इतिहास सहित आज ऐसे चौराहे पर आकर खड़ा हो गया है जहां उसकी वास्तविकता को प्रत्येक सत्यान्वेषण निर्णायक परिणाम की स्वीकृति द्वारा अनुमोदित कर सकेगा।

लक्ष्मीनारायण चतुर्वेद
स्नातक गु० म० वि० ज्वालापुर

॥ ओ३म् ॥

प्राक्कथन

अयुर्यज्ञेन कल्पताम्

यह यज्ञ प्रसाद पुस्तिका आपके हाथों में है। यद्यपि प्रतिवर्ष चतुर्वेद-पारा-यण-यज्ञ द्वारा सभी के हृदय पात्रों में अनुष्ठान का शाकल्य पूर्ण किया जाता है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार यज्ञ कुण्ड में शाकल्य समर्पित किया जाता है।

फिर भी न केवल बरनावा वासियों के लिए या फिर मेरठ-मण्डल निवासियों के लिए अथवा भारतीय जनता के लिए ही यज्ञ-पुरुष श्री ब्रह्मचारी जी स्वयं प्रसाद हैं। किन्तु वह तो समस्त विश्व की विभूति रूप अमूल्य और अनिर्वचनीय प्रसाद हैं।

आज के युग का सौभाग्य है कि उसे एक ऐसा प्रसाद मिला है जो मान-वता को अभय दान देकर दानवता के चंगुल से छुड़ाने में पूर्व सशक्त है। विश्व की व्यापक संस्कृति को एक ऐसा निष्पक्ष सिद्धान्त उपलब्ध हो गया है जो साम्प्रदायिक जनता को जड़ से उखाड़ फैंकने में बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है। श्री ब्रह्मचारी जी के सहस्त्रों प्रवचन अपने स्वरूप में पृथक-पृथक परम पावन मन भावन अवसादहर प्रसाद हैं। जो कि विषाद को निषाद के समान समूल उन्मूलनार्थ समर्थ हैं। वे प्रवचन वेद-रहस्य के कोष हैं। प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति के समीचीन समन्वय हैं। आधुनिक और पुरातन इतिहास के साहसपूर्ण संरक्षण के मूर्तिमान लक्षण हैं। सुदूर व्यतीत अतीत के सर्व प्रतीत सतत चमत्कारिक विज्ञान के जलधि हैं।

जितना-जितना इनका श्रवण-मनन और निदिध्यासन करते जायेंगे उतना-उतना यह अद्‌भुत प्रसाद विविधास्वादनों का जनक बनता जायेगा।

भौतिक दृष्टि से आर्यजन विशिष्ट धार्मिक जन अदृष्ट ऐतिहासिकता से संतुष्ट यह स्थान आज यह भव्य भवनों के नानाविध कक्षों से लाक्षागृह की जिस विलक्षण शोभा को बढ़ा रहा है क्या वह प्रशंसनीय प्रसाद नहीं है ?

और क्या पाण्डवों से अकाण्ड बैर ताण्डव कर्ता गुरुकुल कलंक का यह

अंगभूत निश्शंक साहस अपने इतिहास की ओर संकेत करके जिस वास्तविकता को प्रकट कर रहा है उसे आप प्रसाद नहीं मानेंगे ?

आज तो महाभारत के होने-न-होने की चर्चा ने जिस चंचलता को जन्म देकर भारतीयता की श्रद्धा के अंचल को प्रज्वलित करना आरम्भ कर दिया है क्या उसे रोकने का यह समारम्भ समयोचित नहीं है ?

यज्ञ विज्ञान के अज्ञानी यज्ञ में जिस आज्य समर्पण को मंहगाई के कारण वर्जनीयता की संज्ञा देते हैं और गर्हणीय मद्य मांसादि को खाद्य समस्या का समाधान उस सात्विक राजसिक और तामसिक कोटि का ठीक-ठीक विश्लेषण करके सात्विकता से विश्व को विशुद्ध करना क्या यज्ञ प्रसाद नहीं कहा जाना चाहिए।

यज्ञ के माध्यम से एक ओर परमेश्वर की आराधना, दूसरी ओर वर्षा के द्वारा अकाल की निवृत्ति, पुत्र की प्राप्ति, स्वास्थ्य का लाभ, संक्रामक कीटाणुओं का संहार, फैलते हुए बात दूषणों का क्षारण, सामुदायिक अनुष्ठानों से प्रतिदिन के होने वाले अपराधों का निधन, श्रेष्ठ का संगठन आदि-आदि सैकड़ों अमूल्य लाभों को देने वाला थोड़े से धृत सामग्री व्यय वाला क्या यह यज्ञ प्रसाद सबके लिए प्रसन्नता का विषय नहीं है ?

यज्ञार्थ किए गए व्यय को अपव्यय कहने वाले हठी दुराग्राही व्यक्ति भी जब उक्त लाभों का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं तब वे स्वयं यज्ञ के भक्त होकर इसे वैदिक विधि में अनुरक्त हो जाते हैं क्या यह इन्द्रजाल माया (जादू)से कम प्रसाद कहा जायेगा ?

यज्ञ ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सभी ऊंच को, नीच को, ज्ञानी को, अज्ञानी को, बालक को, वृद्ध को, निर्बल को, सबल को, निर्धन को, सधन को, सूक्ष्म को, स्थूल को अर्थात् समस्त जगत को अपना भाग मिल जाता है। यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म" यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है—अर्थात् जितने भी अच्छे-से-अच्छे आचरण हैं वे यज्ञ स्वरूप ही हैं।

जीवन यज्ञ रूप ही है—यदि पूरे शरीर को यज्ञकुण्ड मान लिया जाये तो जठराग्नि अग्नि के स्थान पर, भोजन सामग्री के स्थान पर, पाचक द्रव्य समिधा के स्वरूप में, इन्द्रियां ऋत्विज, आत्मा यजमान और ज्योतिषां ज्योतिरेकं मनः ब्रह्मा हो कर दिन-रात इस यज्ञ का सम्पादन कर रहे हैं। तभी

तो वेद में "आयुर्यज्ञेन कल्पताम् प्राणो यज्ञेन कल्पताम्, वाग्यज्ञेन कल्पताम्, श्रोत्रंयज्ञेन कल्पताम्, चक्षुर्यज्ञेन कल्पतामित्यादि कहा गया है।

दूसरे रूप में यदि हृदय को अग्नि कुण्ड की संज्ञा दिया जाये तो उसमें संकल्प विकल्प समिधाएं, श्रद्धा घृत, पवित्राचरण शाकल्य स्वाध्याय ब्रह्मा स्थानीय यम-नियमादि सेवन ऋत्विज होकर उत्तमोत्तम कर्म के जनक होंगे। यज्ञ सम्बन्धी भौतिक अभौतिक आदि विविध रूपक अपनी-अपनी उचित कल्पनाओं के द्वारा करके यज्ञ की व्यापकता को ठीक-ठीक समझा जा सकता है।

"यज्ञो वै विष्णु" यज्ञ ही साक्षात परब्रह्म का स्वरूप है अतः यज्ञों के द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति होती है—तभी तो स्मृति—

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च, ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।

का प्रतिपादन कर रही है। विश्व की समस्त शिल्पकलाओं और आविष्कारों का मूल भी यज्ञ ही है। यही बताने के लिए यज्ञ कुण्ड का तल प्रदेश जितना होगा उससे चौगुना मुख्य भाग होगा क्योंकि अग्निधारा मूल में अल्प और शिरोभाग में विस्तृत होकर समस्त जगत को सूक्ष्म से स्थूल बनाने के सिद्धान्त की ओर संकेत कर रही है। साधारण यन्त्र से लेकर असाधारण आकाशीय यान तक सूक्ष्म से स्थूल व्यापार का ही सर्वत्र प्रसार है। जिन विशिष्ट परमाणुओं के गुण धर्म का आधार यज्ञाग्नि है उन्हीं के क्रियात्मक कृत्य का स्वरूप यन्त्रों से नियंत्रित मिलेगा।

यज्ञ मेखला की कुल्यारूप नलिका में जो जल आकलित किया जाता है उससे एक और समस्त स्वास्थ्य विज्ञान और दूसरी ओर भौतिक विज्ञान का जन्म होता है।

२५ सहस्त्र मील घेरे की पृथ्वी का एक भाग मानव जाति के निवासार्थ और तीन भाग समुद्र जिस प्रकार वायु दूषण के दूरीकरणार्थ वैज्ञानिक पद्धति में निबद्ध है उसी प्रकार अग्नि कुण्ड की ज्वालाओं से उद्भूत काष्ठगत दूषित वायु (गैस) अग्निकुण्ड की मेखला की कुल्या (नाली)से आकृष्ट होकर विशुद्ध हो जाती है। दूसरी ओर अग्नि-सम्पर्क पाकर पानी वाष्प बनकर पयोधर का रूप धारण कर लेता है और अन्तरिक्ष की अग्नि विद्युत को उत्पन्न करता है जिससे यह विद्युत शरीर शरीर के समस्त अंगों का इच्छा मात्र के आधार पर ही परिचालन करती है और समस्त यन्त्रों को चलाने में प्रयुक्त

होती है। वेद में तेल से यंत्रों का चलाना निषिद्ध है क्योंकि उससे वायु दूषण का प्रसार होता है। यही प्रतिपादित करने के लिए वेदों में विद्युत विज्ञान विस्तार से वर्णित है और इसी का मूल यज्ञ में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित है।

संक्रामक कीटाणुओं का निराकरण करने वाला निरापद अक्लिष्ट अकाट्य और सार्वकालिक उपाय जैसा यज्ञ है वैसा वैज्ञानिकों को आजीवन खोजने पर भी न मिलेगा। प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ मल-मूत्रनिष्ठीवनादि के द्वारा दुर्गन्ध निर्विवाद रूप से पैदा करता रहता है। अतः उसे इसके प्रत्युपाय में यज्ञ करना ही श्रेयस्कर है।

परमात्मा की उपासना करने के लिए भी यज्ञ से बढ़कर अन्य कोई उपकरण नहीं। पाषाणादि की पूजा न तो वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल है और ना ही व्यावहारिक रूप से उपयुक्त है। क्योंकि 'यज्ञो वै विष्णुः'' कहकर वेद यज्ञाग्नि को प्रकाशक होने के कारण परम प्रकाशक परमात्माग्नि तथा अपने में प्रकाशक जीवात्माग्नि आदि त्रिविध ज्योति को ध्वनि रूप ज्योति से मिश्रित करके, पार्थिवाग्नि अन्तरिक्षाग्नि (विद्यु त) और द्युलोकाग्नि (सूर्य) इन तीन प्रकार की अग्नियों का सम्बन्ध शरीर के ऊरु प्रदेश से लेकर वक्षस्थल और मस्तिष्क तक अभिन्न रूप से एकीकृत करके यज्ञ को ही मुख्यता प्रदान कर रहा है। यह विज्ञान पाषाण पूजा के माध्यम में कणमात्र भी घटित नहीं होगा।

तमसो मा ज्योतिर्गमय इस मन्त्र की संगति भी अज्ञान से विज्ञान की ओर ले जाने के लिए भौतिक यज्ञ से जीवन यज्ञ की अग्नि दीप्त करने में ही लगती है ! क्योंकि अकर्म या कुकर्म ही अन्धकार है और सत्कर्म ही प्रकाश है। अतएव—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत' का आदेश वेद दे रहा है। आवहनीयाग्नि, दाक्षिणात्य और गार्हपत्य इन तीन अग्नियों का सम्बन्ध तो यज्ञ के बिना बन ही नहीं सकता।

जिस प्रकार नेत्राग्नि सूर्याग्नि के बिना कार्य नहीं कर सकती। उसी प्रकार आत्माग्नि यज्ञ रूप कर्माग्नि के बिना पंगु रहती है और जब तक जीवन रूह यज्ञाग्नि सुसंस्कारों की सुगन्धि से नहीं भरती तब तक परमाग्नि से इसका मिश्रण नहीं हो पाता।

यदि शरीर में होने वाली कर्मेन्द्रियों को अन्धकार के गुणधर्म से आवृत्त

कहा जाए तो ज्ञानेन्द्रियों को प्रकाश के गुणधर्म से व्याप्त कहना ही पड़ेगा।

शरीर का समस्त व्यापार अन्धकार से प्रकाश की ओर ही बढ़ने का प्रयास करता रहता है। इसी को बुरे आचरण से अच्छे आचरण की ओर, दुःख से सुख की ओर, शत्रुता से मित्रता की ओर, रात्रि से दिन की ओर, आलस्य से परिश्रम की ओर, औरअज्ञान से विज्ञान की ओर ले जाने वाला यज्ञानुष्ठान कहा जाता है। शास्त्रों में भी कहा है—

सह यज्ञा प्रजा सृष्टवा, पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्मेषवोस्त्विष्ट कामधुक्॥

अर्थात् उत्तम कर्म रूप यज्ञ के साथ समस्त जीवों को जन्म देकर प्रजापालक परशेश्वर ने कहा कि हे जीवो! तुम इस श्रेष्ठ कर्म रूप यज्ञ से ही अपना विकास करो। यह तुम्हारी इच्छाओं को पूर्ण करे।

भौतिक विज्ञान मात्र से सन्तुष्ट होने वाले तथा अध्यात्म विज्ञान से नाक सिकोड़ने वाले भले ही यज्ञ की महत्ता स्वीकार न करें किन्तु उन्हें भी जाने-अनजाने में इसी यज्ञ के अनुष्ठान का प्रतिष्ठान बनना पड़ रहा है। वे जिस भौतिक-विज्ञानार्थ अटूट परिश्रम कर रहे हैं। वह कर्म भी तो यज्ञ ही है। यदि प्रत्येक कर्म स्वार्थ अर्थात् अपनेपन से विरक्त होकर प्राणीमात्र के लिए किया जाए तो यह यज्ञरूप होकर समस्त विश्व को शांति का क्षेत्र बनाकर दुखों से छुटकारा दिला दे।

जब तक यह जगतीतल ज्ञान यज्ञ की वेदी पर पदार्पण नहीं करता, तब तक अशान्ति का ही अनावश्यक आवरण ओढ़े रहेगा।

यद्यपि यज्ञों के विविध भेद हैं उनके विषय में प्रकाश देना इस छोटी-सी पुस्तिका में असम्भव है। एतदर्थ पाठकों को ऐतरेय ब्राह्मण, सांख्यान्यन ब्राह्मण आदि ग्रन्थ देखने चाहिएं। क्योंकि उनमें इनका विस्तार से वर्णन है। सोमयोग(अग्निष्टोभ), राजसूय(राज्याभिषेक), दर्शपौर्णमासेष्टि, रुद्रदेवताक, अग्निदेवताक याग, पुत्रेष्टि, अश्वनेधादि यज्ञ करना तो दूर, इनके सम्बन्ध में पूरा-पूरा ज्ञान भी केवल उंगली पर गिने जाने वाले विद्वानों को छोड़कर कहीं भी नहीं मिलेगा।

अग्निहोत्र यज्ञ भी सर्व साधारण की बुद्धि में नहीं आता। आजकल यत्र-तत्र वेद-पारायण यज्ञ होते हैं जिनमें घृतऔर सामग्री मात्र का प्रयोग ही दृष्टिगोचर होता है।

फिर भी न होने से कुछ होना अच्छा है, इस किवदन्ती के अनुसार

अधिक नहीं तो अग्निहोत्र का ही रहस्य समझने के लिए प्रयत्न किया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पंच महायज्ञ करने के लिए बहुत ही सरल और उपादेय प्रकार प्रदर्शित किया है।

इनके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति सरलता पूर्वक सांसारिकता से छुटकारा पाकर मुक्ति तक जाने का अधिकारी बन सकता है। इस लोक और परलोक को अनायास ही सुधार सकता है।

ब्रह्मयज्ञ सन्ध्या के द्वारा आत्म शुद्धि और परमात्म-चिन्तन, देवयज्ञ अग्निहोत्र से भौतिक जगत को अपने अनुकूल करना। पितृयज्ञ-माता पिता को अपनी सेवाओं से प्रसन्न रखना, अतिथि यज्ञ आगन्तुक परिचित, अपरिचित, विद्वान महात्मा आदियों का सत्कार करना और बलिवैश्व—देव यज्ञ प्राणि मात्र को अन्नादि से तृप्त करना तो प्रतिदिन का कर्त्तव्य या धर्म समझा जाना चाहिए।

इन यज्ञों में महर्षि ने जिन मन्त्रों का समावेश किया है वे सब ही एक ओर तो प्रार्थनापरक हैं और दूसरी ओर आत्म-उन्नति के प्रकार पर प्रकाश डालते हैं एवं तीसरी ओर यज्ञ सम्पादन की विधि तथा भौतिक जगत को दीर्घायुष्यपूर्ण स्वास्थ्य के अनुकूल बनाने के लिए संकेत करते हैं।

यज्ञ का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि जिस प्रकार प्रकृतिगत समस्त वस्तुएं दूषित होकर भी स्वयं परिशुद्ध होती रहती हैं उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को बुराइयों को छोड़ते जाना चाहिए और अच्छाइयों को लेते रहना चाहिए।

यज्ञ की सुगन्धी जिस प्रकार आसपास के समस्त स्थान को सुगन्धित बना देती है उसी प्रकार जीवन में यज्ञ को प्रतिष्ठित होकर अर्थात् प्रतिष्ठा प्राप्त कोई भी पुरुष अन्तरात्मा को इतना सुगन्धित अर्थात् निर्मल कर लेता है कि उसमें बुरे संस्कार रहते ही नहीं। अतः ऐसा ही व्यक्ति वास्तविक परमेश्वर का भक्त अथवा आर्य कहलाता है। यही अन्तिम लक्ष्य रखकर यह यज्ञ प्रसाद पुस्तिका आपके हाथों में पहुंचाई जा रही है।

स्व० आचार्य लक्ष्मी नारायण चतुर्वेद, एम० ए०,
साहित्याचार्य, विद्या भास्कर, आयुर्वेद भास्कर
सम्पादक

प्रथम खण्ड

महाराजा अश्वपति के वृष्टि-यज्ञ का वर्णन

१ नवम्बर १९६९ को प्रातः ६ बजे बरनावा में श्री जगमोहन जी के मकान पर दिया हुआ प्रवचन)

देखो मुनिवरो ! मुझे स्मरण है कि महाराजा अश्वपति के यहां यज्ञ हो रहा था। महर्षि चाकराणी उस यज्ञ में उद्‌गाता बनने वाले थे क्योंकि वृष्टि यज्ञ का आयोजन था। महाराज अश्वपति मनु महाराज के गौत्र में उत्पन्न हुए थे। मनु परम्परा में भी लगभग कोई एक सहस्त्र प्रणाली में राज्य करते थे। उनके यहां से यह निमन्त्रण आया कि यज्ञ में चलना है। उस समय मेरी कन्या की अवस्था केवल पांच वर्ष की थी। ब्रह्मवेता बनने के लिए तत्पर हो ही गई थी ! हृदय में यह वेदना जागृत हुई कि हे पुत्री ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? क्या तुम यहां आनन्द से रहना चाहती हो या यज्ञ में प्रविष्ट होना चाहती हो ? उसने कहा कि प्रभु ! "यत्रम् भगा प्रथम मम वेचः यशवानि ग्रंथनमम् वेचु न यज्ञं भगा वस्तु तमामी अस्वते। यज्ञ भगानम मधु कन्छनम् मेद्यो न देवं ब्रह्मणे गुरु अश्चताः।" हे गुरु ! यह आपको प्रतीत है कि यह जो यज्ञ है यह तो महापुरुष है, क्या मैं महापुरुष की शरण में नहीं जाना चाहती हूं ? यह कैसे हो सकता है ? आपको यह प्रतीत होगा महाराज दिग्ध ने याज्ञवल्क्य की सभा में क्या कहा था ? महाराजा जन्मदग्नि ने महाराज कोडंग ऋषि के यहां क्या कहा था ?

यह भी आपको प्रतीत हो गया होगा कि गार्गी ने यज्ञ के सम्बन्ध में क्या कहा है ? महर्षि भारद्वाज ने तो यहां तक कहा है कि यज्ञ ही मानव का जीवन है, यज्ञ ही मानव की प्रतिभा है, यज्ञ ही मानव के जीवन का एक सार कहा जाता है। क्या मैं यज्ञ में प्रविष्ट नहीं होना चाहती ? यह कैसे हो सकता है ? यह मैं कैसे उच्चारण कर सकती हूं ? यज्ञ तो सबसे उत्तम पुरुष है ?

जिस समय ऋषि-मुनियों का यह प्रश्न चला, जमदग्नि ने जिस समय अर्द्ध-भागा अस्तिति ऋषि से यह कहा था कि हे महाराज देवता कितने हैं तो

उन्होंने देवताओं की गणना कराते हुए तीन हजार तीन सौ छः देवताओं की गणना कराई थी। उस समय फिर प्रश्न किया गया कि देवता कितने हैं तो उन्होंने कहा कि देवता ३५ हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैं तो उन्होंने कहा कि देवता छः हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैं तो उन्होंने कहा तीन हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैं तो उन्होंने कहा दो हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि देवता कितने हैं। तो उन्होंने कहा कि केवल एक देवता है। उन्होंने कहा कि यह जो यज्ञ है यही सबका सर्वोप्रथम देवता है। यही संसार में एक देवता है क्योंकि यह जो भी कुछ हो रहा है, हमारी आपकी विचारधारा चल रही है यह भी यज्ञ है। हम जो कर्म करते हैं यह भी सब यज्ञ है।

यज्ञ का देवता कौन है। यज्ञ का देवता अश्वपति कहलाया गया है और मैं उद्गाता बनना चाहता हूं, उद्गाता का देवता अग्नि है। उन्होंने कहा कि अग्नि का देवता उसका द्यौ है। उन्होंने कहा कि द्यौ का देवता कौन है ? द्यौ का देवता अन्तरिक्ष है। अन्तरिक्ष का देवता कौन है ? गन्धर्व लोक है। गन्धर्व लोक का देवता कौन है ? गन्धर्व लोक का देवता चन्द्र लोक है। चन्द्र लोक का देवता कौन है ? चन्द्र लोक का देवता इन्द्र लोक है। इन्द्र लोक का देवता कौन है ? इन्द्र लोक का देवता प्रजापति है। प्रजापति का देवता कौन है ? प्रजापति का देवता यज्ञ कहलाया गया है।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! जब यह वाक्य मस्तिष्क में आते रहे तो चाकरायण से पुनः प्रश्न किया कि हे अत्रि गौत्राय मैं यह जानना चाहती हूं कि यह जो तुम्हारा यज्ञमयी पुरुष है मानो हृदय की यह उद्गमता तुम्हें क्या कह रही है ? उस समय कहा कि समभेवतानी समभगावतस्म्। हे ऋषि कन्या ! मैं यही तो जानने आया हूं कि यज्ञ में मुझे क्या प्राप्त होता है। मैंने तो यह जाना है कि तुमने यह वाक्य अशुद्ध कहा है। उन्होंने कहा कि मैंने इसलिए कहा है कि मैं यह वाक्य उच्चारण न करती तो आपका मुझको निर्णय नहीं हो सकता था। आप उद्गाता बन जाइए। उन्होंने कहा कि यज्ञमान से प्रश्न करूं। उन्होंने कहा कि यज्ञमान से प्रश्न न कीजिए, क्योंकि तुम्हारा जो उत्तर है उद्गाता बनने के लिए वह उद्गाता बनने के लिए यथार्थ है क्योंकि तुम उद्गाता के देवता को जानते हो। परन्तु मैं तुम्हारे से एक वाक्य और जानना चाहूंगी कि तुम उद्गाता हो, कौन से उद्गम विचारों से आहुति दोगे?

उन्होंने कहा पुत्री ! मैं तीन विचारों से दूंगा । तीन ही विचार मेरे समीप रहते हैं। तीन प्रकार की आहुतियां होती हैं संसार में यज्ञशाला में जो आहुतियां देता है वह तीन ही प्रकार की होती हैं । मानो एक राष्ट्रीय आहुति होती है, एक ब्रह्म आहुति होती है और एक मानव आहुति होती है । तीन आहुति होती हैं। मैं तीनों आहुतियों से यज्ञ करा सकूंगा, उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय आहुति कसी होती है, मानवीय आहुति कैसी होती है और देव आहुति कैसी होती है ? उन्होंने कहा—

देवम् समाप्रधम् ब्रह्मे अस्वाति लोकां चंचनम् वोकम् ब्रह्मे अस्वते !

जो ब्रह्म लोक में जाने वाली आहुति है जिससे हम ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं मानो देखो परा विद्या से और दूसरी विचारधारा "राष्ट्रम् चटायम् चटच्यप्रभे अस्वति नामाः यज्ञम् भेवता" मानो जो यज्ञ में आहुति देने के पश्चात चटाचट होता है। चटाचट का अभिप्राय यह है कि मानव का जो शरीर है वह यज्ञ है। इस यज्ञ में जब राष्ट्रीय क्रान्ति आती है तो उसके हृदय में चटाचट होती है। जैसे अग्नि में दी हुई आहुति चटाचट को प्राप्त होती है इसी प्रकार मेरा जो यह शरीर है यज्ञ है, इसमें जितनी भी चटाचट क्रान्ति होगी मेरे मस्तिष्क में, उतना राष्ट्र पवित्र होगा, उतनी राष्ट्रीय क्रान्ति मानवत्व के लिए पवित्र होगी।

"यचयतानम् माम वेताम् ब्रह्मे अस्वति धारा मम वेचाः" तृतीय आहुति है जो मनुष्यों में प्रतिष्ठित होती है। इसलिए मैं तीन विचारों से आहुति देना चाहता हूं। ऋषि कन्या ने कहा कि यथार्थ है यह वाक्य । तुम उद्गाता बन जाओ।

"सम गतानम् मम वेचाः सम भवति मम् वेचिकृतम् ममा अस्वेति भागाम् ब्रह्मे यचतानम् मेधवा च प्रधेः ?" उस समय अश्वपति ने कहा हे ऋषि कन्या ! मैं भी चाकरायण से कुछ प्रश्न करना चाहता हूं। उन्होंने कहा कि कीजिये भगवन् ! तब वह आक्रति कन्याम् ब्रह्मे अस्तानम् मेघा प्रभे अस्ति । अब देखो मुनिवरो, महाराजा अश्वपति ने यज्ञ का चुनाव किया तो चाकरायण से कुछ प्रश्न किया गया। उन्होंने कहा कि यह जो तुम बारम्बार स्वाहा देते हो इसका क्या अभिप्राय है ? प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ में स्वाह देते हो

इसकी मीमांसा क्या है ? उस समय महाराजा चकरायण ने कहा था "समाक्रतम् व्रधे पुनुरुक्तम् ब्रह्मा स्वाह लोका प्रधे अस्ति सुमना ग्रणाः।" मैं जो स्वाहा देता हू कि मेरे हृदय में जो दृढ़ता है, नाना प्रकार की त्रुटियां हैं वह प्रत्येक आहुति के साथ में स्वाह करके जैसे सामग्री अग्नि में भस्म हो जाती है इस प्रकार मैं भी इस संसार की जो ब्रह्ममयी ज्योति है उसे अपनाना चाहता हूं स्वाहा दे करके। जो ब्रह्म रूपी अग्नि मेरे शरीर में प्रदीप्त हो रही है, जो यज्ञ रचा है वह जो ब्रह्म रूपी अग्नि मेरे हृदय में धधक रही है उस अग्नि को स्वाहा दे करके चेतनित करना चाहता हूं। महाराजा अश्वपति ने कहा कि यथार्थ है इसको उद्गाता चुन लो। उस समय उसको उद्गाता चुन लिया गया। चुनने के पश्चात ब्रह्मा भी बनाये गये। उसके पश्चात् यह विचार आया कि अब हमें पुरोहित किसको बनाना चाहिये ? महाराजा अश्वपति के जो पुरोहित थे वह महाराजा मोगद्ध ऋषि महाराज थे। वह अक्रेति अनावृत्तम वायु गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषि थे।

इसके पश्चात जब अध्वर्यु का वाक्य आया तो अब अध्वर्यु कौन बन सकता है। उस समय कहा गया कि इस कन्या को इस यज्ञ का अध्वर्यु बनाया जाये। अब वाक्य आया कि अध्वर्यु के लिये कुछ प्रश्न होते हैं कि योग्य है अथवा नहीं। उस समय कहा गया कि हम तुम्हें अध्वर्यु बनाना चाहते हैं तुम अध्वर्यु कैसे बनोगी ?

उस समय कन्या बोली कि "ब्रह्म कृताम् मम् अस्वतम् माघ वेतो लज्जाम् भगानम् प्रभे असचतिः" हे अश्वपति ! वास्तव में मैं यह जानती तो नहीं हूं परन्तु यह मैं अवश्य कह सकती हूं कि पूर्व भाग में मुझे आसन दिया जाये। पूर्व भाग जो है वह मेरे लिये आसन है, मैं वास्तव में अध्वर्यु का पालन कर सकूंगी। अध्वर्यु का अभिप्राय है उद्गम ब्रह्मे आस्वानि' मानो जो शरीर में अग्नि प्रदीप्त हो रही है उस अग्नि और सूर्य का जब समन्वय हो जाता है, दोनों का मिलान हो जाता है तो वही अध्वर्यु का कर्त्तव्य होता है।

हे प्राणम् ! प्राचम् प्रभे अस्चतम् प्रजापति न पत्नि अश्वेति कन्या ब्रह्मे ऋषि पुत्रो वृत्यानम्। अश्वपति की पत्नि ने कहा पुत्री मैं भी कुछ जानना चाहती हूं। उन्होंने कहा कि प्रश्न करो। सामग्री का शाकल्य कैसा होता है ?

कौन से शाकल्य से तुम आहुति देना चाहती हो ? तुम्हारा शाकल्य क्या है ?

हे यज्ञमान पत्नि ! शाकल्य २४ प्रकार का होता है। २४ प्रकार का शाकल्य दे करके यज्ञशाला में आहुति दी जाती है। पुनः प्रश्न किया कि हे पुत्री ! तुम कौन से शाकल्य से आहुति दोगी ? उन्होंने कहा कि संसार में १७ शाकल्य होते हैं उनकी आहुति दी जाती है। पुनः से प्रश्न किया कि तुम कौन से शाकल्य से आहुति देना चाहती हो ? उन्होंने कहा कि ११ शाकल्य होते हैं। उन्होंने फिर प्रश्न किया कि तुम कौन से शाकल्य से आहुति देना चाहती हो ? उन्होंने कहा कि वास्तव में मैं १० शाकल्य से आहुति दिलाना चाहती हूं। उन्होंने पुनः फिर प्रश्न किया तो उन्होंने कहा कि मैं एक शाकल्य से आहुति दिलाना चाहती हूं। कैसा सुन्दर वाक्य कैसा उत्तम वाक्य था। उन्होंने कहा हे देवी ! तुम इनकी मीमांसा करो जिस समय तुम यज्ञशाला में आध्वर्यु बनोगी।

चौबीस की आहुति क्या है ? तुम्हें प्रतीत है कि जब मानव जन्म लेता है और संसार की जानकारी होती है तो २४ प्रकार का इसको हर्ष होता है। जैसे हमारे यहां पांच ज्ञान इन्द्रियां होती हैं, पांच कर्म इन्द्रियां होती हैं, पांच प्राण होते हैं और मन बुद्धि यह सत्तरह बनते हैं परन्तु हर्ष और शोक मिला दिया जाता है और मानो प्रभी अस्तित मिला दिया जाता है तो इस प्रकार से यह चौबीस बन जाते हैं और सत्तरह से कैसे देना चाहती हूं पांच प्राण, पांच उप प्राण, पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं, मन और बुद्धि है मैं इनका शाकल्य बना करके यज्ञशाला में आहुति देना चाहती हूं । उन्होंने कहा कि देखो मेरी दस इन्द्रियां हैं, दसों इन्द्रियों का शाकल्य बना करके और ग्यारहवें मन का उसमें समन्वय करके आहुति देना चाहती हूं। उस समय कहा कि तुम एक से कैसे आहुति देना चाहती हो ? उन्होंने कहा कि एक से यह कि मैं एक संकल्प से आहुति दिलाना चाहती हू। संकल्प क्या होगा ? वह संकल्प केवल जैसे प्रभु का यज्ञ है ऐसे ही मैं उस संकल्प से आहुति दिलाना चाहती हूं। उस समय यज्ञमान पत्नि ने कहा कि इसको अध्वर्यु बनाया जाये। उस समय उसे अध्वर्यु बनाया गया।

जब यज्ञ प्रारम्भ होने लगा तो यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाले पापड़ी

ऋषि आ पहुंचे। यज्ञशाला में अश्वपति ने उन्हें आसन दिया। ऋषि जब विराजमान हो गए तो वहां यह संकल्प था कि वृष्टि हो जानी चाहिए। मुनिवरो देखो ! संकल्प मात्र से ही जब वृष्टि का प्रारम्भ होने लगता है, यज्ञ में शाकल्य बनाये जाते हैं, बाहरिय शाकल्य और आन्तरिक शाकल्य दोनों का समन्वय हो करके ही संसार में प्रभु की चेतना और संकलनता जागरूक हो जाती है। जागरूक हो जाने के पश्चात वृष्टि प्रारम्भ होने लगी। जब वृष्टि होने लगी तो प्रजा में एक नाद होने लगा कि ऋषि परम्परा को धन्य है जो उसके मस्तिष्क में इस प्रकार की विचारधारा आ पहुंची। जब नाद बजने लगा तो यज्ञ की पूर्ण आहुति भी होनी थी। अश्वपति के यहां ६ मास तक यज्ञ चलता रहा। उस यज्ञ की पूर्ण आहुति का जब समय आया तो पूर्ण आहुति में विराजमान हो करके वहां दक्षिणा का प्रश्न आने लगा। महाराजा अश्वपति की पत्नि ने कहा कि ब्रह्मा की क्या दक्षिणा होती है, उद्गाता की क्या दक्षिणा, अध्वर्यु की क्या दक्षिणा होती है और पुरोहितों की क्या दक्षिणा होती है ?

मुनिवरो ! जब दक्षिणा के सम्बन्ध में प्रश्न चलने लगे तो ब्रह्मा से यह प्रश्न किया गया कि ऋषिवर ! मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम्हारी दक्षिणा क्या होगी। उस समय ऋषि ने कहा था कि जो तुम देना चाहते हो दे दो। उन्होंने कहा कि जो दक्षिणा है उसी दक्षिणा को मुझसे प्रदान करो मैं उसे लेने के लिए उद्यत रहूंगा। मैं वास्तव में उस चेतना का इच्छुक हूं तुम उन शब्दों को उच्चारण करो और शब्द के साथ में मैं दक्षिणा प्रदान करूं। तो मैं यह चाहता हूं कि तुम अपने हृदय का जो संकल्प है उस संकल्प की दक्षिणा मुझे अर्पित कर दीजिए। उस समय कहा कि बहुत सुन्दर महाराज ! मैं उसका संकल्प अवश्य करूंगा। मैं उसकी दक्षिणा अवश्य प्रदान करूंगा। ब्रह्मा की कोई दक्षिणा नहीं होती। ब्रह्मा की दक्षिणा ही केवल उसका संकल्प, उसकी त्रुटियां होती हैं। इसी प्रकार पुरोहित से प्रश्न किया गया कि आप क्या दक्षिणा लेंगे। उन्होंने कहा कि मैं यह दक्षिणा लेना चाहता हूं कि यह जो तुम्हारा जीवन है यह यज्ञमय बना रहे। मैं इस दक्षिणा को चाहता हूं। उद्गाता से कहा कि हे चाकरायण तुम क्या दक्षिणा लेना चाहते हो जो वाक्य उच्चारण करोगे मैं वही दक्षिणा प्रदान करूंगा। उन्होंने कहा कि मैं यह चाहता हूं कि मेरे जो उद्गम विचार हैं, मेरा जो उद्गाता पन है वह तुम्हारे

गृह में सदैव बना रहे। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर भगवन ! मैंने इसको प्रदान कर दिया है। उस समय कन्या पुत्री से कहा गया कि हे पुत्री तू क्या चाहती है ? उसने कहा कि मैं यह दक्षिणा चाहती हूं कि मैंने जो यह नाना २४ से लेकर के एक संकल्प के साथ में जो शाकल्य से आहुति दिलाई है मैं इसकी दक्षिणा चाहती हूं कि २४ प्रकार की जो प्रतिभा हैं यह दक्षिणा मुझे अर्पित कर दीजिये। यह मेरे गृह में, मेरे राष्ट्र में सदैव चलती रहेगी जिससे यह राष्ट्र ऋषियों का बन जायेगा। इस कामना के साथ उन्होंने कहा कि वास्तव में मैंने सब यह दक्षिणा प्रदान कर दी है।

अब प्रजापति पत्नि यज्ञ शाला में एक आसन पर स्थिर हो गई और ब्रह्मा से कहा कि तुम मुझसे क्या दक्षिणा चाहते हो। उन्होंने कहा कि देवी ! मैं तेरे से यह दक्षिणा चाहता हूं कि तेरे हृदय में जो मानवीय अग्नि प्रदीप्त होती रहती है वह अग्नि इसी प्रकार धधकती रहे। इस अग्नि की मुझे दक्षिणा दे दीजिए कि यह अग्नि शान्त न हो पाए। उन्होंने कहा कि मैंने प्रदान कर दी। पुरोहित से कहा कि हे पुरोहित देवता ! तुम मेरे से क्या दक्षिणा चाहते हो ? हे देवी ! मैं तेरे से यह दक्षिणा चाहता हूं कि तेरे गर्भ में जिस बालक का जन्म हो उसमें और तेरे में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा मैंने यह भी दक्षिणा प्रदान कर दी है। अब उद्गाता से प्रश्न किया गया कि तुम मुझसे क्या दक्षिणा पान करना चाहते हो ? उन्होंने कहा कि मैं यह दक्षिणा चाहता हूं कि राष्ट्र में तुम्हारे यहां जो भी पुत्रियां हों, कन्यायें हों वह किसी प्रकार के दुराचार में न रह करके यह जो मैंने उद्गम विचार, मैंने पुनरुक्ति तीनों से आहुति दी है, यह तुन्हारे सर्वत्र राष्ट्र में कन्याओं के समीप बनी रहे, उन्होंने कहा बहुत सुन्दर यह भी मैंने प्रदान कर दी। ऋषि कन्या से कहा कि हे देवी ! तू क्या चाहती है ? यों तो तू आयु में सूक्ष्म है, परन्तु माता के तुल्य तू क्या चाहती है ?

'समागच्छम् ब्रह्मे व्यापनोति तम ब्रह्मणे वाचा ब्रह्मे जातनोति कामाः वृघ्म ब्रह्मे'।

हे देवी ! तेरी मेरी एक जाति है। मैं तुम्हें क्या दक्षिणा प्रदान कर सकती हूं। उन्होंने कहा कि यहां जाति का प्रश्न नहीं है, यहां यज्ञ की दक्षिणा

का प्रश्न है। तो तुम क्या चाहती हो? उन्होंने कहा कि "सम भवेतानम चत-रुत लोकाः अश्वेति भागम् ब्रह्मणे आचाः" मैं यह चाहती हूं जातिय नाते नहीं उच्चारण कर सकती कि तुम्हारा और मेरा दोनों का समन्वय हुआ है। तुमने मुझे ऐसे सुन्दर यज्ञ का अध्वर्यु बनाया है, शाकल्य का स्वामी बनाया है, मैं यह चाहती हूं कि मैंने जो इस प्रकार के शाकल्य को बनाया है वह तुम्हारे इस राष्ट्र में, तुम्हारे द्वारा वह जो तुम्हारी जठाग्नि में शाकल्य शुद्ध पवित्र होता है। इसी प्रकार का शाकल्य बना रहेगा। चरित्र रूपी जो शाकल्य है वह तुम्हारा बना रहेगा तो तुम्हारे अश्वपति का राष्ट्र पवित्र होगा। मैं यह दक्षिणा चाहती हूं। उन्होंने कहा हे मातेश्वरी! मैंने तुम्हें प्रदान कर दिया।

दक्षिणा का प्रश्न तो समाप्त हो गया परन्तु जब अपने-अपने गृह को प्रस्थान करने लगे तो महाराजा अश्वपति ने अपनी पत्नी से कहा कि देवी! अब द्रव्य की प्रदानता होनी चाहिए क्योंकि दक्षिणा तो हमने प्रदान कर दी है और दक्षिणा तो हमारी पूर्ण होनी चाहिए जो हमने दी है। परन्तु अब हमें इनको कुछ देना चाहिए। क्या देना चाहिए? पालन-पोषण के लिए देना चाहिए। शारीरिक तत्वों के लिए बाहरीय दक्षिणा और देनी चाहिए। ऐसा स्मरण आ रहा है जैसे मैं यज्ञशाला में प्रविष्ट हूं। अब जब यज्ञशाला में द्रव्य की प्रदानता होने लगी तो महाराजा चाकरायण को सहस्र मुद्रा अर्पित की और उन्होंने स्वीकार कर लीं।

पुरोहित जी को भी एक सहस्र मुद्रा प्रदान कीं और उन्होंने भी स्वीकार कर लीं, उसके पश्चात् जब ब्रह्मा को बाहरीय दक्षिणा देने लगे तो वह नग्न थे। स्वर्ण के रथ को मुद्राओं से परिपक्व करके वह ब्रह्मा को अर्पित कर दिया। इसके पश्चात् अब अध्वर्यु की दक्षिणा का प्रश्न था। अध्वर्यु की दक्षिणा जब देने लगे तो अध्वर्यु की दक्षिणा के लिए अश्वपति पत्नि ने प्रसन्न हो करके कहा कि महाराज जितना सुयोग्य ब्रह्मा है उतना ही सुयोग्य अध्वर्यु है। इसको स्वर्ण रथ के साथ एक सहस्र मुद्रा और एक सहस्र गऊयें प्रदान की जाएं। उन्होंने कहा कि देवी! ऐसा नहीं होना चाहिए, क्योंकि यज्ञ में गऊयें हमने किसी को प्रदान नहीं की हैं। इसलिए हमारे लिए गऊयें देना योग्य नहीं है। उन्होंने कहा कि भगवन! यह कन्या है यह आयु में कितनी सूक्ष्म है और ज्ञान इसका कितना प्रबल। तुम ज्ञान से देना चाहते हो अथवा आयु से देना

गृह में सदैव बना रहे। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर भगवन ! मैंने इसको प्रदान कर दिया है। उस समय कन्या पुत्री से कहा गया कि हे पुत्री तू क्या चाहती है ? उसने कहा कि मैं यह दक्षिणा चाहती हूं कि मैंने जो यह नाना २४ से लेकर के एक संकल्प के साथ में जो शाकल्य से आहुति दिलाई है मैं इसकी दक्षिणा चाहती हूं कि २४ प्रकार की जो प्रतिभा हैं यह दक्षिणा मुझे अर्पित कर दीजिये। यह मेरे गृह में, मेरे राष्ट्र में सदैव चलती रहेगी जिससे यह राष्ट्र ऋषियों का बन जायेगा। इस कामना के साथ उन्होंने कहा कि वास्तव में मैंने सब यह दक्षिणा प्रदान कर दी है।

अब प्रजापति पत्नि यज्ञ शाला में एक आसन पर स्थिर हो गई और ब्रह्मा से कहा कि तुम मुझसे क्या दक्षिणा चाहते हो। उन्होंने कहा कि देवी ! मैं तेरे से यह दक्षिणा चाहता हूं कि तेरे हृदय में जो मानवीय अग्नि प्रदीप्त होती रहती है वह अग्नि इसी प्रकार धधकती रहे। इस अग्नि की मुझे दक्षिणा दे दीजिए कि यह अग्नि शान्त न हो पाए। उन्होंने कहा कि मैंने प्रदान कर दी। पुरोहित से कहा कि हे पुरोहित देवता ! तुम मेरे से क्या दक्षिणा चाहते हो ? हे देवी ! मैं तेरे से यह दक्षिणा चाहता हूं कि तेरे गर्भ में जिस बालक का जन्म हो उसमें और तेरे में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा मैंने यह भी दक्षिणा प्रदान कर दी है। अब उद्गाता से प्रश्न किया गया कि तुम मुझसे क्या दक्षिणा पान करना चाहते हो ? उन्होंने कहा कि मैं यह दक्षिणा चाहता हूं कि राष्ट्र में तुम्हारे यहां जो भी पुत्रियां हों, कन्यायें हों वह किसी प्रकार के दुराचार में न रह करके यह जो मैंने उद्गम विचार, मैंने पुनरुक्ति तीनों से आहुति दी है, यह तुन्हारे सर्वत्र राष्ट्र में कन्याओं के समीप बनी रहे, उन्होंने कहा बहुत सुन्दर यह भी मैंने प्रदान कर दी। ऋषि कन्या से कहा कि हे देवी ! तू क्या चाहती है ? यों तो तू आयु में सूक्ष्म है, परन्तु माता के तुल्य तू क्या चाहती है ?

'समागच्छम् ब्रह्म व्यापनोति तम ब्रह्मणे वाचा ब्रह्म जातनोति कामाः वृध्म ब्रह्म'।

हे देवी ! तेरी मेरी एक जाति है। मैं तुम्हें क्या दक्षिणा प्रदान कर सकती हूं। उन्होंने कहा कि यहां जाति का प्रश्न नहीं है, यहां यज्ञ की दक्षिणा

का प्रश्न है। तो तुम क्या चाहती हो? उन्होंने कहा कि "सम भवेतानम चतरुत लोका: अश्वेति भागम् ब्रह्मणे आचा:" मैं यह चाहती हूं जातिय नाते नहीं उच्चारण कर सकती कि तुम्हारा और मेरा दोनों का समन्वय हुआ है। तुमने मुझे ऐसे सुन्दर यज्ञ का अध्वर्यु बनाया है, शाकल्य का स्वामी बनाया है, मैं यह चाहती हूं कि मैंने जो इस प्रकार के शाकल्य को बनाया है वह तुम्हारे इस राष्ट्र में, तुम्हारे द्वारा वह जो तुम्हारी जठाग्नि में शाकल्य शुद्ध पवित्र होता है। इसी प्रकार का शाकल्य बना रहेगा। चरित्र रूपी जो शाकल्य है वह तुम्हारा बना रहेगा तो तुम्हारे अश्वपति का राष्ट्र पवित्र होगा। मैं यह दक्षिणा चाहती हूं। उन्होंने कहा हे मातेश्वरी! मैंने तुम्हें प्रदान कर दिया।

दक्षिणा का प्रश्न तो समाप्त हो गया परन्तु जब अपने-अपने गृह को प्रस्थान करने लगे तो महाराजा अश्वपति ने अपनी पत्नी से कहा कि देवी! अब द्रव्य की प्रदानता होनी चाहिए क्योंकि दक्षिणा तो हमने प्रदान कर दी है और दक्षिणा तो हमारी पूर्ण होनी चाहिए जो हमने दी है। परन्तु अब हमें इनको कुछ देना चाहिए। क्या देना चाहिए? पालन-पोषण के लिए देना चाहिए। शारीरिक तत्वों के लिए बाहरीय दक्षिणा और देनी चाहिए। ऐसा स्मरण आ रहा है जैसे मैं यज्ञशाला में प्रविष्ट हूं। अब जब यज्ञशाला में द्रव्य की प्रदानता होने लगी तो महाराजा चाकरायण को सहस्र मुद्रा अर्पित की और उन्होंने स्वीकार कर लीं।

पुरोहित जी को भी एक सहस्र मुद्रा प्रदान कीं और उन्होंने भी स्वीकार कर लीं, उसके पश्चात् जब ब्रह्मा को बाहरीय दक्षिणा देने लगे तो वह नग्न थे। स्वर्ण के रथ को मुद्राओं से परिपक्व करके वह ब्रह्मा को अर्पित कर दिया। इसके पश्चात् अब अध्वर्यु की दक्षिणा का प्रश्न था। अध्वर्यु की दक्षिणा जब देने लगे तो अध्वर्यु की दक्षिणा के लिए अश्वपति पत्नि ने प्रसन्न हो करके कहा कि महाराज जितना सुयोग्य ब्रह्मा है उतना ही सुयोग्य अध्वर्यु है। इसको स्वर्ण रथ के साथ एक सहस्र मुद्रा और एक सहस्र गऊयें प्रदान की जाएं। उन्होंने कहा कि देवी! ऐसा नहीं होना चाहिए, क्योंकि यज्ञ में गऊयें हमने किसी को प्रदान नहीं की हैं। इसलिए हमारे लिए गऊयें देना योग्य नहीं है। उन्होंने कहा कि भगवन! यह कन्या है यह आयु में कितनी सूक्ष्म है और ज्ञान इसका कितना प्रबल। तुम ज्ञान से देना चाहते हो अथवा आयु से देना

चाहते हो, यह मैं नहीं जान पाई। उन्होंने जहा कि देवी ! हमें देना चाहिए ज्ञान से ही परन्तु ज्ञान किसी का सूक्ष्म नहीं है। यह तो हमारे सौभाग्य हैं, हम जितनी इनके चरणों की वन्दना कर सकें उतनी ही सूक्ष्म है परन्तु देना चाहिए। पत्नी की हठ के साथ वह रथ उसे प्रदान किया गया। जब प्रदान करने लगे तो ऋषि कन्या ने कहा कि मै इसको स्वीकार नहीं करूंगी क्योंकि यह मेरे योग्य ही नहीं है। मुझे एक सहस्र गऊयें नहीं चाहिएं और न मुझे यह स्वर्ण का रथ चाहिए। मैं तो यह चाहती हूं कि मेरा ज्ञान ऐसे ही प्रदीप्त रहता रहे। उन्होंने कहा कि नहीं, तुम्हें यह स्वीकार करना होगा। मैं इसे स्वीकार नहीं करूंगी इससे मैं असंतुष्ट हो जाऊंगी और तुम्हारे यज्ञ में विघ्न आ जाएगा और यज्ञ में किसी प्रकार को बाधा नहीं होनी चाहिए। अध्वर्यु का अप्रसन्न होना ही यज्ञशाला में यज्ञ का भ्रष्ट हो जाना है जब यह वाक्य महाराजा अश्वपति के मस्तिष्क में आया तो उन्होंने कहा कि मैं यह वाक्य कैसे स्वीकार करूं परन्तु यह वाक्य तो जो स्वीकार करने योग्य है परन्तु क्या प्रदान करें ? उन्होंने कहा कि जो इच्छा। अश्वपति ने कहा कि मेरी इच्छा तो पूर्ण हो चुकी है अब तुम अपनी इच्छा प्रकट करो। तो उन्होंने कहा कि मेरी इच्छा यह है कि जितना द्रव्य आपने उद्‌गाता को दिया है उतना मुझे प्रदान कर दीजिए, क्योंकि मैं उसी का अधिकारी हूं ! यहां अधिकारी अनाधिकारी का प्रश्न आ जाता है। कन्या को एक सहस्र मुद्रा प्रदान की गई। रथ और मुद्रा को लेकर वहां से प्रस्थान किया।

अब मार्ग में चले जा रहे हैं और गुरु के प्रश्न हो रहे हैं। हे भगवन ! स्वर्ण के रथ को आप क्या करोगे, आप वस्त्र भी ग्रहण कहीं करते, कोई वस्तु नहीं है, आपने ब्रह्मा पद को अपनाया है और इतने द्रव्य को अपना लिया है, द्रव्य का आप क्या कर सकेंगे, ? उन्होंने कहा कि देवी ! यह हमारे कार्यों में आ जाएगा। महाराज क्या कार्य करोगे ? वास्तव में यह द्रव्य तो कोई सम्पदा नहीं है। उन्होंने कहा कि नहीं देवी ! यह वास्तविक सम्पदा तो नहीं है परन्तु वास्तविक सम्पदा के साथ में यह हमारे पालन-पोषण में तो आ जायेगी। पालन पोषण भी तो एक वास्तविक सम्पदा होती है। तो भगवन ! इससे पूर्व आप क्या कार्य करते थे। इससे पूर्व आपके शरीर की पालना पोषणा कैसे होती थी ? उन्होंने कहा देवी ! वह तो प्रायः प्रभु देता ही है। हे भगवन ! यदि हम इस द्रव्य को त्याग दें तो क्या प्रभु अब नहीं दे सकेगा।

उन्होंने कहा पुत्री ! अवश्य प्रदान करेगा परन्तु यज्ञमान के यहां से जो हमें प्राप्त हुआ है वह हमारे पालन पोषण में आ जाना और उसका संकल्प पूरा हो जाना बहुत अनिवार्य है। तो क्या प्रभु ! मैं यह स्वीकार कर सकती हूं कि मैं इस द्रव्य को अपनाकर चलूं ? उन्होंने कहा कि नहीं पुत्री ! अपनाओ या न अपनाओ परन्तु तुम्हें यह वाक्य स्वीकार करना होगा कि महाराजा अश्वपति के यहां जो वस्तु हमें प्रदान हुई है वह तो बहुत ही सुन्दर है। वह उनका संकल्प है, उसी संकल्प के साथ-साथ हमारा जीवन बनेगा। उन्होंने कहा तो चलिये भगवन !

परन्तु जब प्रश्न उत्तरों के बिना न रहा गया तो मार्ग में रथ को स्थिर कर लिया और स्थिर करके यह कहा कि आप यज्ञ के ब्रह्मा बने मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। उसके पश्चात् मार्ग में रथ आगे चलेगा। उन्होंने कहा कि पुत्री विराजमान हो जाओ। दोनों विराजमान हो गए और यह कहा कि भगवन ! आपने मेरे से यह कहा था कि जो प्रकृतिवाद है यह हमारे विनाश का कारण बन जाता है फिर आपने विनाश का कारण क्यों अपना लिया है। उन्होंने कहा कि हे देवी। यह मार्ग जो हमने अपनाया है यह विनाश का वास्तविक मार्ग नहीं है क्योंकि विनाश का मार्ग उस काल में हो जाता है जबकि हम इसमें संलग्न और इसमें सक्रिय हो जाते हैं। हम इसमें सक्रिय नहीं हैं, हमारा इसमें कोई मिलन नहीं है, हम इससे पृथक भी हैं और इसमें संलग्न भी हैं। तो उन्होंने कहा तो भगवन ! आप पृथक कैसे हैं ? उन्होंने कहा कि पुत्री ! तुम दृष्टिपात कर रही कि अंग कौन-सा ऐसा है जो संलग्न है किसी कार्य में। उन्होंने कहा कि यह तो नहीं है परन्तु आपके मन की भावना यह क्या कह रही है। आपने इसको अपना लिया है। मेरे विचार में तो यह आता है कि यह सब द्रव्य अश्वपति के राष्ट्र के लिए अर्पित कर दिया जाये। उन्होंने कहा कि पुत्री ! ऐसा नहीं होगा क्योंकि ऐसा होना हमारे लिए असम्भव है क्योंकि यह यज्ञ की दक्षिणा है। यज्ञ की दक्षिणा को इस प्रकार प्रदान करना हमारे लिए योग्य नहीं है। उन्होंने कहा तो भगवन ! मैं तो आगे जाऊंगी नहीं। मैं तो यहीं आसन लगाऊंगी क्योंकि मैंने तो अपने प्रथम वाक्यों में कहा है कि नाना प्रकार की ऋषि कन्याओं को मैंने धिक्कारा है और मैंने भारद्वाज गोत्र को भी धिक्कारा है, मुद्गल गोत्र को भी धिक्कारा है इस सम्बन्ध में। मैं उनको अब क्या उत्तर दे सकूंगी।

उन्होंने कहा हे पुत्री ! धिक्कारने का प्रश्न नहीं है। यह तो हमारे संकल्प शक्ति का प्रश्न है। इसमें तुम्हारा विवाद नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा तो भगवन ! अब कैसे हो ? उन्होंने कहा कि चलो अपने आश्रम में चलेंगे वहां जैसी भी इच्छा हो वैसा ही कर लेंगे। तुम्हारे जो विचार हैं उससे मेरा विचार कदापि भी पृथक् नहीं।

कन्या ने उस रथ को लेकर प्रस्थान किया। सारथी से कहा कि रथ को अपृत दिशा में ले चलो। मानो प्राचीदिग् दिशा में उस रथ का आगमन कराया। उसी दिशा में आश्रम था। जब आश्रम में प्रविष्ठ हो गये तो नाना ऋषि बालिकाएं पुत्राणी सब आये कि आज ऋषि आश्रम में यह क्या आया है क्योंकि कन्याओं ने ऐसा रथ कदापि भी दृष्टिपात नहीं किया था। जब राष्ट्र में जाने का सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ तो उसको दृष्टिपात करने का सौभाग्य भी कैसे प्राप्त हो सकता था ? यह सब कुछ होने के पश्चात् प्रश्न उत्तर होने लगे कि महाराज यह क्या है ? तो उत्तर देते हुए कहा कि रथ है, इसमें द्रव्य है, अश्वपति के यहां से प्राप्त हुआ है। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। स्थिर हो गये। रात्रि छा गई और विश्राम मुद्रा में चले गये।

अर्द्ध रात्रि का जब भाग आया तो मूल नक्षत्र प्रतिभा आ रही थी ! पुत्री ने पुनः प्रन्न किया कि महाराज ! द्रव्य का क्या करोगे। इस द्रव्य को प्रदान कर दो। यह द्रव्य हमें नहीं चाहिए। यह हम ब्रह्म-वेत्ताओं के लिए कलंक है। इस जीवन को कलंकित बनाना आपका हमारा कर्त्तव्य नहीं है। उस समय पुत्री से कहा कि तुम मेरे आसन से चली जाओ। जहां से तुम आई थीं वहीं चली जाओ अन्यथा तुम्हारा मस्तिष्क फट जायेगा। उन्होंने कहा कि भगवन ! मेरा मस्तिष्क फट जाएगा ? कैसे फटेगा ? तुन इस विषय में अति प्रश्न करने लगी हो। अति प्रश्न करना ही तुम्हारे मस्तिष्क के दो भाग हो जाना है। कन्या शान्त हो गई।

वह रात्रि समाप्त हो गई। रात्रि में फिर कोई प्रश्न उत्तर नहीं चला। दिवस आया परन्तु दिवस में भी कोई प्रश्न उत्तर नहीं चला क्योंकि शिष्य के लिए भयभीत हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। पुनः जब रात्रि आई तो गुरु ने कहा कि हे पुत्री ! तुम्हारी इच्छा क्या है ? उन्होंने कहा कि भगवन ! मेरी इच्छा है कि ब्रह्म वेत्ताओं के लिए कलंकित नहीं होना चाहिए। ब्रह्म

वेत्ता के लिए दो कलंक होते हैं—एक द्रव्य कलंक होता है और एक भोग। नाना प्रकार की जो विकृतियां हैं एक वह उसके लिए चरित्रिय महा कलंक है। इसके पश्चात जो लोकेषणा है वह भी उसके लिए कलंक है। द्रव्य के तीन कलंक अपनाने से आप कलंकित होते हैं इसलिए हमें नहीं अपनाना चाहिए। तो अब करना क्या चाहिए ? इस द्रव्य को महाराजा अश्वपति को दीजिए अन्यथा इसको ऋषियों में प्रदान कर दीजिये। ऋषियों में प्रदान नहीं करते तो जो भिक्षुओं के अङ्ग हैं उन्हें प्रदान कर दो। भिक्षुओं को भी नहीं देना चाहते तो नदियों में अर्पित कर दो, नाना प्रकार के प्राणी इस स्वर्ण को पान कर जायेंगे। जब यह कहा गया तो ऋषि का हृदय दहलता था क्योंकि ऋषि यज्ञ के ब्रह्मा बने थे और ब्रह्मा को दक्षिणा प्रिय होती है। उस समय कहा पुत्री ! तुम्हें जो यह एक सहस्र द्रव्य प्राप्त हुआ है क्या तुम इसको अर्पित कर सकोगी। उन्होंने कहा कि प्रभु ! मेरे तो किसी कार्य की नहीं है क्योंकि आप भी नग्न रहते हो और मैं भी नग्न रहती हूं। दोनों में यह प्रश्न आता ही नहीं दोनों में विशेषता यही है कि मैं प्यारी सूक्ष्म पुत्री हूं, दोनों की विडम्बना दोनों के साथ-साथ नहीं चल पाएगी।

मुनिवरो देखो ! परिणाम यह हुआ कि वह सब द्रव्य और रथ को ले जाकर सरयू के तट पर भिक्षुओं को दान कर दिया। स्वर्ण का रथ अश्वपति को अर्पित करने चल दिये। जब वह रथ को अर्पित करने गये तो पुत्री ने कहा कि भगवन ! आप जाइए। आप यज्ञ के ब्रह्मा बने हैं अश्वपति को रथ अर्पित कीजिए। उन्होंने कहा मैं रथ के साथ नही जाऊंगा क्योंकि मुझे लज्जा आती है। जो यज्ञ की दक्षिणा है उनको अर्पित करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है। तो पुत्री ने कहा तो मैं जा रही हूं भगवन ! उस समय कन्या रथ के साथ में चली गई। जाने के पश्चात अश्वपति से कहा कि महाराज ! यह मेरे पूज्यपाद ने रथ आपको अर्पित किया है आपके ही लिए। उन्होंते कहा कि हे ऋषि कन्या ! मैं इसको नहीं अपनाऊंगा। कन्या ने कहा कि और कौन इसको अपनायेगा ? उन्होंने कहा कि ऋषि इसको अपनायेंगे। वही इसके ऊपर विश्राम करें, वहीं आंगन में भ्रमण करें। कन्या ने कहा कि इस पर कोई भ्रमण नहीं करेगा। इसको आप अपनाइयेगा अन्यथा यह आपका रथ है इसे स्वीकार कीजिए। उन्होंने कहा कि मैं तो स्वीकार नहीं करूंगा। मेरा संकल्प मेरे समीप आ जाये यह कैसे हो सकता है ? यज्ञ का संकल्प है।

कन्या ने कहा तो जाओ यदि संकल्प आपका यज्ञमान का है तो यहाँ अध्वर्यु का संकल्प है तुम अध्वर्यु के संकल्प से इसे स्वीकार कर लो। उन्होंने कहा कि मैं इसे स्वीकार नहीं करूंगा। यदि ब्रह्मा मुझे पुनः संकल्प करें तो मैं इसे स्वीकार कर सकता हूं तुम अध्वर्यु हो। मैंने तुम्हें एक सहस्त्र मुद्रा दी थी उन्हें तुम संकल्प कर सकती हो और उसे मैं स्वीकार कर सकता हूं परन्तु रथ के संकल्प को मैं पुनः से अपने में अपनाता चला जाऊं इसका मुझे अधिकार नहीं है।

देखो यह जटिल वाक्य पुत्री के समीप आया। उसने कहा कि मैं अभी जाती हूं और अपने पूज्य गुरुदेव को अग्रित करती हूं। इसका आपको संकल्प लेना ही होगा। उन्होंने कहा कि जाओ ब्रह्मा जी से कहो मेरे लिए यह संकल्प दे देवें। मैं इस संकल्प को अवश्य प्राप्त कर सकता हूं क्योंकि उनका संकल्प मुझे प्राप्त हो जायेगा। मेरा संकल्प उन्हें प्राप्त हो गया है। मानो जैसे ब्रह्म का संकल्प प्रकृति को प्राप्त हो गया और प्रकृति का संकल्प ब्रह्म को प्राप्त हो गया दोनों का संकल्प मिलकर वे एक संकल्प बन गया है। मैं ऐसे स्वीकार कर सकता हूं।

अब वह बहुत तीव्र गति में भ्रमण करती हुई गुरु के समीप आई और गुरु से कहा कि महाराज अब आप इस रथ को संकल्प कराइये अश्वपति को। उन्होंने कहा कि पुत्री! मैं नहीं जाऊंगा। मैंने पुनः कहा है कि मैं संकल्प नहीं कर पाऊंगा। उसने कहा कि नहीं जाओगे तो मैं अपने प्राणों की दक्षिणा अर्पित कर सकती हूं आपके लिए क्योंकि यह हमारे लिए कलंक है जो हमें अच्छा नहीं लगता। उसको अवश्य, अर्पित करना चाहिए। उन्होंने कहा कि तुम प्राणों को किसी भी काल में नहीं त्याग सकती। क्या तुम ब्रह्मवेत्ता कहलाती हो? ब्रह्म वेत्ता यह कहता है कि तुम प्राणों की आहुति कैसे दे सकती हो क्योंकि प्राण तुम्हारा नहीं है, प्राण सदैव रहने वाला है। प्राण में सर्वस्व ओत-प्रोत है। इस शरीर को त्याग करके जाओगे तभी प्राणों के साथ में चले जाओगे। क्या तुम्हें यह प्रतीत नहीं है? तुम कौन से प्राण को त्यागना चाहती हो? उस समय कहा है कि मैं उस प्राण को त्यागना चाहती हूं जिससे तुम्हें मैं दर्शन न दे सकूं। उन्होंने कहा कि ब्रह्मे यौगिक प्रभे अस्ति। तुमने योग की मुद्राओं को दृष्टिपात नहीं किया। योग में कोई बात असम्भव नहीं है। योग में यह आता है कि यदि तुम सूक्ष्म शरीर रहोगी वहां भी वार्ता

प्रकट हो सकती है यदि तुम कारण लिंग में चली जाओ तो मुक्ति को प्राप्त हो करके कारण लिंग में हम वार्ता प्रकट कर सकते हैं। तुम कहां जाओगी, प्रभु के क्षेत्र से कोई मानव पृथक् नहीं है।

जब यह वाक्य आया तो कन्या थी और शिष्य थी निरूत्तर हो गई। जब कोई उत्तर न बन सका तो अन्त में यह कहा कि आप संकल्प कराइये। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे कथनानुसार संकल्प करा सकता हूं परन्तु जहां तक प्राणों के त्यागने का प्रश्न है यह आगे से किसी के आगे उच्चारण नहीं होना चाहिए क्योंकि यह मृत्यु है। हताश होना ही संसार में मृत्यु है तुमने यह निराशा कैसे स्वीकार कर ली कि मेरे पूज्य गुरुदेव ! मेरे कथनानुसार कार्य नहीं करेंगे। मैं अवश्य कर सकूंगा जो मेरे और तुम्हारे दोनों के लाभ का है और जहां प्रतिष्ठा का प्रश्न आता है वहां त्याग करना चाहिए क्योंकि त्याग संसार में जीवन है। पुत्री चलो। दोनों ने प्रस्थान कर दिया। अश्वपति के यहां पहुंचे। महाराज अश्वपति ने अपने आसन को त्याग दिया और ऋषि को आसन दिया। राज सिंहासन पर विराजमान करा करके पति पत्नि दोनों ने उनके चरणों को स्पर्श किया। उन्होंने कहा कि अश्वपति ! मैं इस रथ का संकल्प करना चाहता हूं। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर मैं आपसे संकल्प स्वीकार करूंगा क्योंकि पूजनीय ऋषियों से ही अपना संकल्प स्वीकार नहीं करूंगा तो और कौन कर सकेगा। मेरे तो यह बड़े पुण्य हैं वहां वह संकल्प अर्पित कर दिया और अपने आश्रम में प्रविष्ट हो गये।

तो वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि संसार में मानवता क्या है, देवव्रत क्या है ? इन कार्यों के करने के लिए जब मानव को इतनी अति ज्ञानता हो जाती है, प्रभु का यह ज्ञान हो जाता है कि प्रभु ही संकल्प है, जब संकल्प और सभी प्रभु में प्रवीण हो जाता है तो उस समय न तो मानव में दुराचारता रहती है, न किसी कन्या के हनन की प्रवृति आती है मानो वह संसार में व्यापकता को प्राप्त हो करके ब्रह्मवेत्ता की शरण में जा करके उसी में अपने को परिणित कर लेता है।

——

महाराजा दशरथ के पुत्रेष्टी यज्ञ का संक्षिप्त वर्णन

देखो मुनिवरो ! कोई पुत्री है उसके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं होता है तो हमें उसकी कई प्रकार की गति जाननी होगी। सबसे प्रथम उसके नेत्रों को जानना होगा, उसके पश्चात् हमें उसके मस्तिष्क को जानना होगा, उसके पश्चात् उसकी रसना को जानना होगा, उसके पश्चात् उसके नख होते हैं उनको भी जानना होता है। इसी प्रकार उनकी जो कुचम्भ होती है उसको भी जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। योनि का जो अग्रभाग है यदि उसमें किरिकपन आ गया है उसको भी हमें जानना होगा क्योंकि योनि में अनुरथपन आ जाता है। अनुरथपन उसे कहते हैं शून्यवत हो जाना, उसमें अग्रत गति न होना, उसमें प्रतिभा और मननोच हो जाना। यह सब, उस गति को जानना होगा। परन्तु जैसा मुझे वर्णन कराया आयुर्वेद के सिद्धान्त में भी आता है। आयुर्वेद का बहुत ऊंचा विज्ञान आज मेरे मस्तिष्क में आ रहा है परन्तु इसको मैं अधिक विलम्ब नहीं दूंगा, न इसमें मुझे जाना है।

मैं केवल ब्रह्म की चर्चा कर रहा था। उसमें मुझे आनन्द आना चाहिए था परन्तु चलो आज तुम्हें एक वार्ता प्रकट कराये ही देता हूं जिसको जानना तुम्हारे लिए अनिवार्य ही है परन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्त से उसे अच्छी प्रकार जाने। मन की गति को यह जाना जाये कि मन में किस प्रकार की क्रोत उत्पन्न है, उस क्रोतपन को जानना है। क्रोतपन उसे कहते हैं कि यीनि में क्राण गति हो जाना। क्राण गति उसे कहते हैं जिसमें रात कटिक अनुवोच हो जाना अनिवार्य हो जाता है। अब उसका निदान करना। उसके निदान के लिये हमें एक तो सदैव मन के प्रसन्नता की आवश्यकता होती है और मन उस काल में प्रसन्न रह सकता है जबकि हमारे द्वारा खान पान हमारा औषध सुन्दर होगा क्योंकि यह जितना अन्न है यह सभी औषधी कहलाया गया है। जो भी हम पान करते हैं जिससे रक्त बनता है, मज्जा बनती है, ब्रह्मचर्य बनता है, जिससे हमारे नेत्र पुष्ट बनते हैं सब औषधि कहलाती हैं।

अब हमें इसका निदान करना है। हमें उन औषधियों को लाना है जिन औषधियों को हम चमत्कार और अन्धकार से प्रकाश में लाना चाहते

हैं। हमें अब उन औषधियों को जानना है। हमारे यहां एक कठकुत होती है उस पर मानो श्वेत वर्ण का पुष्प आता है। इसका निचला भाग श्वेत और नील वर्ण पर होता है। उसके जो पत्र होते हैं वह पुंसागली के तुल्य होते हैं। उसके जड़ के निचले भाग में लगभग एक सहस्र कीड़े हाते हैं उसकी जड़ में। पर्वतों में यह प्रायः प्राप्त हो जाता है क्योंकि उसमें वह विशेषता होती है कि उस औषधि में मानो मधु का अधिक संचार होता है और वह मधु जितना भी होना चाहिए उतना होता है परन्तु वह कीड़े भी अपनी उद्धवन गति को प्राप्त होते रहते हैं क्योंकि उसकी जड़ में मधुपन होता है। उसका जो मध्यम भाग होता है उसमें कषैलापन होता है और उसका जो ऊपर का भाग होता है उसमें कड़वाहट होती है। यह उस औषधि की एक विशेष पहिचान मानी गयी है। उसके तीनों भाग हमें रसना से जान लेने चाहिएं। उस औषधि को लायें। हमें एक औषधि और लेनी पड़ती है जिसे हम शंख आनुवत कहते हैं। शंख आनुवत् वह औषध होती है जैसे एक हमारा बादाम होता है उस पर जैसा पुष्प आता है वैसा शंख आनुवत पर आता है, ऐसे ही उसके पत्र होते हैं परन्तु उसकी जो छाल होती है वह कड़वाहट में होती है, उसका जो पत्र होता है वह श्रानवन मधु होता है और उसकी जो जड़ होती है उसमें एक ऐसा विशेष रस होता है जो न कड़वा होता है न मधु होता है उसमें एक वकाअकृत होता है, अकृत रस होता है। इसके पत्तों को, उसके पुष्पों को और उसकी छाल को, उसकी जड़ की कृतिमा को इन तीनों को लेकर के और वह जो मैंने पूर्व स्थलों में किरकिर का नामोच्चारण किया था इन ६ भागों को लेकर के तीन भाग उसके और इसके पंच भाग ले लेने चाहियें। यह अष्टांग बन जाता है। देखो एक होता है पंचांग और एक होता है अष्टांग। अष्टांग को हमें पात में पकाना है, इसकी पात बनानी है और पात बनाकर के एक ऐसे पात्र में स्थिर करना है जिससे उसका जो विष है क्योंकि उस औषधि में विष होता है विष होने के नाते उसको एक गिट्टी के पात्र में स्थिर करना है जिसे रज के पात्र में स्थिर करने से उसका विष वह रज स्वयं अपने में शोषण कर ले परन्तु उस विष को हमें दूरी नहीं देना है। उस औषध को मेरी पुत्री को चालीस दिवस तक पान करा करके ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कराते हुए तो किसी भी प्रकार के दोष हों, योनि दोष हो, नेत्र दोष हो, अवनत नाड़ि दोष हो सब दोष उसी से नष्ट हो जाते हैं। उसको अष्टांग कहते हैं। एक पांचांग होता है, एक त्रिगात होता है और भी नाना प्रकार

का मैंने इससे निदान किया है ।

महाराजा दशरथ के यहां जब पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया था उस समय मैं लगभग ८४ वर्ष तक आयुर्वेद का अध्ययन कर चुका था । पुत्रेष्टि यज्ञ कराने का वही पंडित अधिकारी होता है जो आयुर्वेद का महान प्रकाण्ड पंडित होता है और आयुर्वेद का पंडित ही यज्ञ की सुगन्धित औषधियों को जानता है कि यज्ञ में कौन-कौन सी औषधियों को पान कराने से यज्ञमान के नासिका में, नेत्रों में, श्रोत्रों में, उसकी रसना के अग्रभाग में लग जाने से कौन-कौन से दोष दूर होते हैं । यह सब आयुर्वेद का पंडित जानता है । यह कोई ऐसा आसान विज्ञान नहीं है जिसको हम दो हो दिवस में जान जाते हैं, यह ऐसा विज्ञान है जिसको हमें बहुत अनुसन्धान करना है ।

सबसे प्रथम राजा दशरथ का ही निदान किया कि दशरथ के द्वार अकृत में क्या था क्योंकि मानव के दस द्वार होते हैं और दसों द्वारों में देवता विराजमान होते और उन देवताओं को शुद्ध करने के लिए नौ ही प्रकार की औषधियां होती हैं । अब इन औषधियों को जानना होगा जैसे हमारे नेत्र में जमदाग्नि बैठा हुआ है, एक में विश्वामित्र बैठा हुआ है, एक श्रोत्र के अगले भाग मे भारद्वाज है और एक नासिका के अग्र भाग में अश्वनी कुमार है । इसी प्रकार इन्हीं के प्रति हमें इनको शोधन करने के लिए उन औषधियों को जानना होगा क्योंकि औषधि भी इन्हीं के नामों से उच्चारण होती है जैसे जमदाग्नि औषधि होती है, भारद्वाज औषधि होती है, जिन औषधियों में भवण अधिक होगा क्योंकि भवण का अभिप्राय यह है कि जिन औषधियों में मित्रता अधिक होगो । औषधियों की मित्रता को जानना कि कौन-कौन से रुग्ण की कौन-कौन सी मित्रता को उत्तम बना सकती है । यह सब औषधि यज्ञशाला में प्रविष्ट होनी चाहिए । इन सब औषधियों की हमें सामग्री बनानी पड़ती है ।

जैसा मैंने बहुत पूर्व काल में इसका अध्ययन किया । पुत्रेष्टि यज्ञ का उच्चारण करना तो बहुत ही सहज है परन्तु उसका करना या उसका निदान करना यह आश्चर्यजनक नहीं क्योंकि उसी प्रकार की उसमें समिधा होती है । पुत्रेष्टि यज्ञ में एक तो आक की समिधा होती है, शमी समिधा होती है,

उसमें जटामासी होती है, त्रिक्राट होती है, उसमें चन्दन होता है—दोनों प्रकार का चन्दन, अनुभूत चन्दन भी होता है, उसमें एक समुभूक नाम का एक वृक्ष होता है उसमें अनीकृत नाम की समिधा होती है। इसमें लगभग दस प्रकार की समिधा होती है। उन समिधाओं का निदान किया जाता है कि यज्ञशाला में उन समिधाओं को कैसे प्रतिष्ठित करना है। जैसे मेरे उस चैतन्य देव परमात्मा ने माता की जो योनि बनाई है उसी प्रकार की हमें यज्ञ-शाला बनानी है। उसी प्रकार की योनी बनानी है उसी प्रकार की उसमें समिधाओं को चुनना है। जैसे-जैसे समिधा चुनते रहते हैं उसी प्रकार उसमें भूर्भुस्व जैसे-जैसे उच्चारण करते रहते हैं उन्हीं मन्त्रों का उच्चारण करते-करते मेरी पुत्रियों के जो घाव होते हैं, वह उन समिधाओं और वह जो सामग्री होती है उसकी सुगन्धि से उसके धुन्द्र से वह सब शुद्र होते चले जाते हैं। इसी प्रकार बहुत कुछ जानने को आवश्यकता है। परन्तु क्या जाने संसार में कुछ जानते भी नहीं। इतना जानने के पश्चात् भी कुछ नहीं जाना जाता। कुछ हैं ही नहीं जाने भी क्या। जानने के लिए संसार है परन्तु जाना भी नहीं जाता। कैसे जाने इस संसार को। यह मुझे बड़ा संशय रहता है कि मैं इस संसार को कैसे जानूं क्योंकि यह आयुर्वेद का तो इतना बड़ा विज्ञान है जिसमें मानव के जन्म-जन्मान्तर समाप्त हो जाते हैं।

मुझे इसका निदान करने का सौभाग्य रहा। मैंने तीनों रानियों को एक पंक्ति में एकत्रित किया। उस समय मैं यह नहीं जानता था कि पुत्री-वत् कैसा होता है। अध्ययन तो किया था कि योनि भी होती है, अंगरत होता है, इसको मैंने श्रवण तो किया था परन्तु वास्तव में इसके रूप को नहीं जानता था। मैंने आयुर्वेद के सिद्धान्त से कहा कि तुम मुझे ज्ञान कराओ क्योंकि भोली भाली वार्ता इसी प्रकार की होती है। वास्तव में संसार में जिस वाक्य को जो नहीं जानता उसमें किसी प्रकार का उसे दोषारोपण भी नहीं होता। उसी प्रकार मैंने कहा कि तुम मुझे अपनी योनियों का दिग्दर्शन कराओ। जब तक मैं योनि को नहीं जानूंगा तब तक मैं यज्ञशाला भी कैसे बनाऊंगा। परन्तु महर्षि वशिष्ठ के लिए यह एक बड़ी लज्जा का विषय बन गया था क्योंकि वह इन विषयों को जानते थे। उस समय महारानी अरुणदति ने कहा था कि भगवन ! हे ऋषि पुत्र। ब्रह्मणानासतंग। यह कैसे आपको दृष्टता ब्रह्मे ! उन्होंने कहा कि मुझे दर्शन होने चाहिएं। उन सब पुत्रियों ने मुझे

अपना दिग्दर्शन कराया। दिग्दर्शन कराते मैंने उनकी योनियों को जाना। तीन ही प्रकार की यज्ञशाला बनाई गई ! एक ही यज्ञशाला में तीन प्रकार का भाव बनाना पड़ा। उस भाव को बनाने से तीन ही प्रकार की उसमें योनियां बनाईं। उसी प्रकार की योनि। ठीक यज्ञशाला ही तो सफल होती हैं अन्यथा यह सारा जगत ही यज्ञ में परिणित हो रहा है। उस समय से मुझे ज्ञान हुआ कि यह जितना भी जगत है यह सब यज्ञ हो रहा है। मानो जितना भी जगत जो आहार करता है, दृष्टिपात करता है यह सभी एक प्रकार का यज्ञ हो रहा है।

——

यज्ञ तथा वेद की महत्ता

मानवता, राष्ट्रीयता की रक्षा विज्ञानमय तथा यज्ञमय वैदिक मार्ग से ही सम्भव है। रूढ़िवाद तथा धर्मनिरपेक्षता से नहीं।

(१६ अक्तूबर १९७१ अर्थवेद पारायण महायज्ञ कृष्ण नगर, दिल्ली-५१ में रात्रि के ८-३० बजे दिया हुआ प्रवचन)

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां जो पाठ्यक्रम है वह परम्परागतों से ही परम पवित्र माना गया है। बेटा हम परम पवित्र उसे कहा करते हैं जिसमें इस परमपिता को मनोहर आभायें और ज्ञान और विज्ञान सदैव हमें दृष्टिपात आता रहता है। आज यहां हम उस यज्ञ स्वरूप की महिमा का गुण गान गाते चले जा रहे थे।

बेटा ! यज्ञ स्वरूप कौन है ? जब हम यज्ञ स्वरूप की कल्पना करते हैं और हम उसे वैज्ञानिक रूपों से अंकित करने लगते हैं तो वह मेरा प्यारा प्रभु

यज्ञ स्वरूप प्रतीत होने लगता है। वह कैसा सुन्दर यज्ञ स्वरूप है? बेटा! जिसकी आभा का पृथ्वी मण्डल से ले करके सूर्य मण्डल अथवा चन्द्र मण्डल, गन्धर्व लोक, इन्द्र लोकों तक हमें दर्शन होता है। जब हम उसकी आभाओं का इनमें दीर्घ दर्शन करते हैं तो हम यह कहा करते हैं कि प्रभु कितना महान है? कितना यज्ञ स्वरूप है, उसकी आभा में यह सर्वत्र प्राणी मात्र नृत्य कर रहा है।

हास्य...कैसा प्रिय वह मेरा प्रभु है। जब हम अपने हृदय को स्वच्छ और निर्मल बना लेते हैं तो वह जो मेरा देव है अपने आंगन में प्रायः धारण कर लेता है। मेरे प्यारे प्रभु का जो हृदय है वह इतना विशाल है, इतना नितान्त है कि मानव का हृदय स्वच्छ हो जाता है, समन्वय हो जाता है। वह कितना सुन्दर दृश्य होता है जब एक मानव के हृदय का मिलान प्रभु की उस महान चेतना से अथवा उसके हृदय से होता है। जिस प्रकार माता अपने प्यारे पुत्रों को जानती है जब वह क्षुधा से पीड़ित होता है और माता अपने हृदय से, अपने कण्ठ में धारण कर लेती है और अपनी लोरियों का पान कराती है उसकी क्षुधा को शान्त करने के लिए। जो वेद का विचार है, वेद का हम दीर्घ दर्शन करते हैं, वेदों की जब प्रत्येक मन्त्र शब्द की आभाओं पर हम विचार विनियम करते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि वास्तव में वेद है क्या? वेद तो बेटा एक प्रकाश है! महानता उसमें ओत-प्रोत है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! बहुत पुरातन काल हो गया जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में नाना प्रकार की उस वैदिक विद्या का प्रायः अध्ययन करता रहता था। वह समय आज भी ऐसा स्मरण आने लगता है जैसे आज भी मैं उस महान देव पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत-प्रोत हूं। वह दृश्य स्मरण आता है जिसमें मृगराज भी उस शिक्षा को पान करते थे। उस काल में मानव का हृदय इतना स्वच्छ हो जाता था। वेद के अनुकूल हृदय उन योगियों का हुआ करता है जो मल विक्षेप आवरणों से पृथक हो जाते हैं। वैदिक प्रकाश से उनका हृदय प्रकाशित रहता है क्योंकि आत्मा तो प्रायः पिपासु रहती है।

आत्मा तो बेटा! मृगराजों में भी रहता है। उस महान हृदय स्वच्छ को, ब्रह्म विद्या को, पवित्र विद्या को, पान करने के लिए किसका हृदय

नहीं चाहता ? मानव का हृदय ही नहीं मृगराजों का हृदय भी यह चाहता रहता है।

तो आज बेटा मैं इन विवेक की चर्चाओं को अधिक प्रकट करने नहीं आया हूं। केवल वाक्य हमारा उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि यह उस महान यज्ञ स्वरूप का विचार विनिमय करने का प्रयत्न करें।

बेटा ! हमारी यज्ञशाला में चार भाग होते हैं। एक भाग में ब्रह्मा विराजमान होता है। द्वितीय भाग में यज्ञशाला होता है। तृतीय भाग में अध्वर्यु होता है और चतुर्थ भाग में उद्गाता होता है। यह यज्ञशाला में चार आसन होते हैं। यह जो चार आसन हैं आज हमें इनको विचारना चाहिए। इनका क्या-क्या कार्य होता है ? यज्ञ में जब विधि महान होती है, अन्तः-करणीय होती है और सुदृढ़ होती है तो उस यज्ञ में उसकी आभा सदैव ओत-प्रोत हो जाती है। मेरे प्यारे ऋषिवर ! हमारे यहां महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, और भी महर्षि मुद्गल इत्यादियों ने, शाण्डिल्य जी ने इस यज्ञ के नाना प्रकार के भेदों का वर्णन किया है। जिस प्रकार का रुद्र यज्ञ होता है इसी प्रकार साधारण यज्ञ होता है। साधारण यज्ञ उसे कहते हैं जब मानव के समीप कोई उद्देश्य नहीं होता और यज्ञ किया जाता है। परन्तु कर्मकाण्ड जो होता है वह पवित्र होना चाहिए। कर्मकाण्ड का अभिप्राय यह है कि कर्म उसी को कहते हैं जब यह चारों आसन पवित्र होते हैं यज्ञशाला में। मुनिवरो बेटा ! मुझे तो बहुत समय हो गया है यज्ञ की प्रदक्षिणा कराए।

आज मैं उस वाक्य की पुनरुक्ति नहीं करने जाऊंगा। परन्तु वाक्य यह है कि यज्ञ में चार स्थल होते हैं। सबसे प्रथम ब्रह्मा होता है, उसके पश्चात् यज्ञमान होता है, अध्वर्यु और उद्गाता होता है। उद्गाता तो उद्गान गाता है। ब्रह्मा उसका निरीक्षण करता है। अध्वर्यु द्रव्यपति (सामग्री का अधि-कारी) होता है और यजमान उसका अधिपति कहलाया गया है। ये चार आसन होते हैं यज्ञशाला में। इसमें विचारना यह है कि यज्ञशाला में यजमान की कितनी कठिन तपस्या होती है।

हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है कि यज्ञशाला में इतनी अग्नि प्रदीप्त होनी चाहिए समिधाओं के द्वारा कि जितना शाकल्य हो उसकी ऊर्ध्वगति हो

जाए। यज्ञमान का केवल एक कर्त्तव्य होता है आहुति देना और संकल्प ऊंचा बनाना और नेत्रों की दृष्टि किसी और आंगन को न जाना केवल वह जो ऊर्ध्व अग्नि है उसकी ज्योतियों पर दृष्टिपात करना चाहिए। यह यजमान का एक मुख्य कर्त्तव्य होता है। जितने श्रोतागण होते हैं उनका भी ऐसा ही कर्त्तव्य होता है।

इसके पश्चात् जो उद्गाता होता है वह उद्गान गाता है। उसे अपनी रसना और नेत्रों को शब्दों के साथ में सुगठित करना चाहिए, उनके साथ में मन की आभा तो प्रायः होती ही है क्योंकि शब्द का सम्बन्ध मानव की वाणी से होता है, हृदय का मिलान प्रायः बेटा! अक्षरों से होता है, उन शब्दों से होता है जो शब्द वाणी उच्चारण करने वाली है।

इसके पश्चात् अध्वर्यु होता है। यज्ञ में जो द्रव्य होता है वह उसका अधिपति होता है, स्वामी होता है। उसे अध्वर्यु कहते हैं। कितना शाकल्य चाहिए, किस प्रकार का होता होना चाहिए वह सब उसके आंगन में विराजमान होता है। इसी प्रकाार आज हमें इन वाक्यों को वास्तव में विचार विनियम कर लेना चाहिए। अध्वर्यु ऊंचा होना चाहिए। उसके द्वारा संकीर्णता नहीं होनी चाहिए। विशाल हृदय से जब शाकल्य को प्रदान किया जाता है, हवि अग्नि को प्रदान की जाती है, तो उसमें इतनी महानता ओत-प्रोत हो जाती है कि वह अग्नि नेत्रों तक को ज्योति प्रदान करती है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! मुझे स्मरण है एक समय महाराजा अश्वपति के यहां यज्ञ हुआ। वह वृष्टि यज्ञ था। वृष्टि यज्ञ में जो समिधा प्रदान की जाती तो वह इतनी स्वच्छ होनी चाहिए कि उसमें किसी प्रकार भी रुग्ण (दोष) नहीं होना चाहिए क्योंकि समिधा अप्रोत कहलाया गया है। समिधा ही तो बेटा! शाकल्य का बिछोना है। परमाणुवाद का जो आसन है वह समिधा कहलाया गया है। समिधा का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक वेद मन्त्र के साथ में स्वाहा के साथ में उसका अग्नि से मिलान होना चाहिए। ऐसा हमारे यहां बेटा कर्मकाण्ड की पद्धतियों में आता रहता है। आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा करने नहीं आया हूं। वाक्य उच्चारण करना केवल यह कि हमारा कर्मकाण्ड पवित्र हो। हमारा प्रत्येक आसन पवित्र होना चाहिए। आज मैं कोई वाक्य गम्भीर उच्चारण करने नहीं आया हूं। केवल यह कि यज्ञ को संसार

को क्लिष्ट नहीं बनाना चाहिए। नर्क भी नहीं बनाना चाहिए। यज्ञ स्वरूप ही स्वीकार कर लेना चाहिए।

हमारा यह मानव शरीर भी तो एक प्रकार की यज्ञशाला है। इसमें इन्द्रियां 'होता' बनी हुई हैं। प्राण और मन उद्‌गाता और अध्वर्यु के रूप में विराजमान हैं। आत्मा इस शरीर में यजमान के रूप में विराजमान है और परमपिता परमात्का ब्रह्मा के रूप में कार्य कर रहा है। यह शरीर कितनी सुन्दर यज्ञवेदी है, इन्द्रियां होता बनी हुई हैं और आहुति दी जा रही है। मुनिवरो! कैसी सुन्दर आहुति है। जैसा विचार होता है, जैसा वातावरण होता है। उसी प्रकार की आहुति लेकर के बेटा परमाणुवाद की हृदयरूपी यज्ञवेदी में परिणत कर दी जाती है वह उसका शाकल्य है। मुनिवरो! यह आज हमें विचारना है कि जिस प्रकार हमारे शरीर में कोई भी होता (इन्द्रिय) कोई भी कृत्य दूरी चला जाए तो वास्तव में देखो हम उससे विहीन हो जाते हैं। हमारी परम्पराएं परिचर्चाएं समाप्त हो जाती हैं। आज हमें यज्ञ स्वरूप की महिमा को विचारना चाहिए। यज्ञ एक प्रकार का विज्ञान है। बेटा जितना भी विज्ञान है यज्ञ वेदी के आधार पर ही उसका निकास होता है। मुनिवरो! शाकल्य में प्रत्येक पदार्थ होता है सुगन्धि-युक्त, पौष्टिक-युक्त, समिधाएं, नाना घृत, वे सब जब अग्नि में आहुति देते हैं तो इस अग्नि से वृष्टि कराई जाती है। इसी यज्ञ से संसार को विजय किया जाता है। वह विजय किस प्रकार किया जाता है? इसको विचारना है। इसका विचार मैं कल प्रकट कर सकूंगा कि यज्ञ से मानव संसार को किस प्रकार विजय करता है? आज तो केवल हम इतना ही वाक्य प्रकट कर रहे हैं।

बेटा! मुझे महापुरुषों का जीवन स्मरण है। जब भगवान राम वन को चले गए तो भयंकर वनों में सीता, राम और लक्ष्मण तीनों प्राणी समिधा एकत्रित करते थे और नाना प्रकार की सामग्री, औषधियां एकत्रित करके उनसे यज्ञ करते थे। एक समय भगवान राम से सीता ने आलस्य में कहा, प्रमाद में आकर के कि प्रभु आज यज्ञ नहीं कर पाते। उन्होंने कहा सीते! ये शब्द तुम्हारे मुखारविन्द से आज मुझे शोभा नहीं दे रहे हैं क्योंकि यह तुम्हारा मुख है यह भी तो यज्ञ वेदी ही है। इनसे अशुद्ध वाक्य उच्चारण करना यह भी तो शोभा नहीं देता। हे देवी! आज हमें यज्ञ करना चाहिए

क्योंकि मानव का तो एक ही कर्म है 'यज्ञ'। यज्ञ से ही मानव का मन पवित्र होता है। देवी ! हम संसार को विजय कर सकते हैं तो केवल इस यज्ञ के द्वारा ही कर सकते हैं। ऐसा भगवान राम ने कहा तो सीता लज्जित हो गई। लक्ष्मण ने कहा प्रभु ! माता ऐसा शब्द क्यों उच्चारण कर रही हैं, इसका मूल कारण क्या है मैं इसको नहीं जान पाया। क्योंकि माता का तो ऐसा विचार किसी काल में बना ही नहीं है।

उस समय मुनिवरो। उन्होंने विचार किया। महाराज निषाद के राज गृह में से उनके लिए एक समय कुछ भोजन आया। परन्तु वह जो भोजन था वह उन व्यक्तियों का भोजन था जिनके गृहों में यज्ञ नहीं होता था। तो परिणाम क्या ? वे विचार माता सीता के हृदय में समाहित हो गए। उस अन्न का प्रभाव मन पर इतना प्रबल हो गया कि अशुद्ध विचारों का उद्गार उत्पन्न हो गया। उस समय बेटा ! लक्ष्मण ने कहा तो हमें ऐसा अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए। उस अन्न का निर्णय किया गया। निषाद से कहा कि हे निषाद ! तुम्हारे यहां यह अन्न कहां से आया था ? उन्होंने कहा प्रभु ! यह जो अन्न मेरे यहां आया यह स्वर्णकार के गृह में से आया। उस अन्न से यह मन दूपित हो गया होगा। इसमें मेरा दोष नहीं है। राष्ट्र गृह में इसी प्रकार का अन्न आया वह अन्न मैंने प्रदान कर दिया है। इस प्रकार का विचार बेटा सीता के जब मन में आया सीता ने लगभग ५ दिवस तक अन्न पान नहीं किया केवल जल के आधार पर अपने जीवन को व्यतीत करने के पश्चात् छठे दिवस मन का शोधन हो गया। इस मन को शोधन करने का नाम बेटा ! सबसे महान यज्ञ कहलाया गया है।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी को भी अपने दो शब्द उच्चारण करने हैं। मैं तो केवल इतना ही वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूं कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या को संसार में यज्ञ करना चाहिए, सुगन्धि करनी चाहिए। दुर्गन्धि ही न करता रहे। क्योंकि नेत्रों के द्वारा दुर्गन्धि आती है। घ्राण के द्वारा और रसना के द्वारा मुखारविन्द के द्वारा, श्रोत्र के द्वारा, प्रत्येक इन्द्रिय उपस्थ और ग्रीवा के द्वारा इस प्रकृतिवाद को अशुद्ध ही करता रहता है। अरे यदि यज्ञ और सुगन्धि नहीं करोगे तो यह जो वायु मण्डल है, वातावरण है

यह अशुद्धियों से ओत-प्रोत हो करके मानव समाज पतित हो जाता है। इसीलिए बेटा! यज्ञ का ऋषियों ने बड़ा महत्व माना है। आज हमें उस महत्व को विचार विनियम कर लेना चाहिए। ऋषियों ने इसका महत्व क्यों माना है? वेद ने क्यों ऐसा कहा है कि यज्ञ करना चाहिए। वेद इसलिए कहता है क्योंकि वेद स्वयं यज्ञ स्वरूप माना गया है, क्योंकि वेद में ज्ञान और विवेक है, विचार है। उन विचारों से गृह पवित्र होते हैं, राष्ट्र पवित्र होते हैं, वायु मण्डल पवित्र होते हैं। इसीलिए बेटा! वेद का नाम भी यज्ञ स्वरूप को ही कहा गया है।

मानव को अपनी वाणी से ही सुगन्धि करनी चाहिए। वाणी किसकी सुगन्धि-युक्त होती है? जिसमें बेटा! मधुरत्व होता है, यथार्थ होता है, ज्ञान से सजातीय जो वाणी होती है वह वातावरण को पवित्र बना देती है, हृदय को उद्गम बना देती है। वाणी मधु भी हो और वह वेद से सजी हुई भी हो परन्तु मानव का यदि हृदय पवित्र नहीं है तो उस वाणी का कुछ नहीं बन पाता। इसीलिए बेटा! उसके साथ में हृदय होना चाहिए क्योंकि यदि वाणी वेद के शब्दों से सजी होगी और हृदय से सजी हुई नहीं होगी तो उस वाणी का प्रभाव, उस वाणी का अस्तित्व हमारे ऋषि मुनियों ने न होने के तुल्य माना है। आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुण-गान गाते हुए इस संसार में इस यज्ञ वेदी पर दृष्टिपात करें क्योंकि यह संसार ही यज्ञ वेदी है। मैंने कई काल में इसकी मीमांसा की है। विचार यह कि आज हम यज्ञ कर्म करने वाले बनें।

भगवान कृष्ण प्रातः सायंकाल यज्ञ करते थे। इतना सुन्दर यज्ञ होता था कि जब प्रातः और सायंकाल अपनी वचनावली अमृत का पान करते थे तो पक्षीगण भी मौन हो जाते थे। मुझे स्मरण है बेटा! एक समय वह यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ के पश्चात् उन परमाणुवाद पर विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया जो यज्ञ में से परमाणु उत्पन्न हुआ। नाना प्रकार के यन्त्र, नाना प्रकार की वैज्ञानिक सामग्री भी उनके द्वारा रहती थी। उसी से वह उसका अध्ययन करने लगे। मुनिवरो देखो, वह "यज्ञम् ब्रह्म व्यापः" क्योंकि यज्ञ जो इसमें संसार का शाकल्य जब ओत-प्रोत किया जाता है, तो वही शाकल्य यज्ञ वेदी को सुन्दर बना देता है। भगवान कृष्ण एक समय यज्ञ पर अध्ययन कर रहे थे उनकी धर्म देवी रुक्मणी जी आ गईं। उन्होंने कहा प्रभु

आप यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा देवी! मैं इस यज्ञ पर विचार विनियम कर रहा हूं। जा मैंने प्रातः सुगन्धित की है उस सुगन्धि में कितनी तरंगें हैं और उनकी कितनी गति इसका मैं अध्ययन कर रहा हूं। उन्होंने कहा प्रभु! यह भी कोई विचार है? उनका अध्ययन करने से आपका क्या बनेगा? मैं यह जानना चाहतो हूं कि मेरे इन हृदयों में, मेरे इन विचारों में कितनी तरंगें होती होंगी? उन्होंने कहा देवी! तुम्हारे हृदय में यह जो तरंगें हैं, इनका भी निवारण किया जा सकता है। इनकी गणना भी की जा सकती है, यदि तुम्हारे इन वाक्यों में अभिमान नहीं होगा, तुम्हारे इन वाक्यों में जब तक अभिमान है तब तक तुम यज्ञ स्वरूप को जान नहीं पाओगी। तो मेरे प्यारे ऋषिवर। वह रुक्मणी मौन हो गई, चरणों में ओत-प्रोत होकर के उस समय उसका हृदय इतना परिवर्तन हो गया कि वे स्वयं पति के समीप विराजमान होकर के यज्ञ करती थीं और रात्रि-रात्रि व्यतीत हो जाती थी। यज्ञ कें अनुसंधान के विचार विनियम करने वाला वही तो बेटा! पति पत्नी का सुन्दर यज्ञ होता है। गृह को सुन्दर उसी काल में बनाया जाता है जब पति-पत्नी यज्ञ के ऊपर, उसके परमाणुवाद पर, सामग्री शाकल्य पर बेटा! नित्य प्रति विचार विनियम करते हैं। वह विचार और वह सुगन्धि का जब दोनों का मिलन होता है, दोनों का समन्वय होता है तो बेटा! वह एक महान् यज्ञ होता है, उसकी महानता का वर्णन नहीं किया जाता। हमारे ऋषि-मुनियों ने उसको बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। अब मैं बेटा! अपने वाक्यो को समाप्त कर रहा हूं।

(महानन्द जी) मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा ऋषि मण्डल! मेरे भद्र समाज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जिस हृदय से हमें यह पवित्र शिक्षा प्रदान कर रहे थे, उसके पश्चात् अपना कोई वाक्य प्रकट करना हमारे लिए शोभनीय नहीं है परन्तु जब इनकी आज्ञा हुई तो हमें भी कुछ सूक्ष्म अपना विचार प्रकट करना है। मैं आज सबसे प्रथम यज्ञों के सम्बन्ध में अपना विचार देना चाहता हूं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने पुरातन काल के यज्ञों का वर्णन किया, भिन्न-भिन्न यज्ञ होते हैं जैसे 'रुद्र यज्ञ' होता है, 'विष्णु' और 'ब्रह्म यज्ञ' होता है। मैं यज्ञों का वर्णग नहीं कर रहा हूं परन्तु उन यज्ञों का कर्म-काण्ड भी भिन्न-भिन्न होता है।

आज मैं जब संसार को दृष्टिपात करने लगता हूं तो इस मृत मण्डल में जहां हमारी आकाशवाणी जा रही है वहां एक यज्ञ भी दृष्टिपात करता हूं। यज्ञ आधुनिक काल के कर्मकाण्ड की दृष्टि से तो सजातीय है परन्तु परम्परा का जो कर्मकाण्ड है उसका मैं वर्णन नहीं करने आया हूं। विचार क्या ? वह कर्मकाण्ड, वह विचार बहुत ही ऊंचा है। आज तो मुझे प्रतीत होता है आगे आने वाला जो समय है, जगत है उनमें यज्ञ रूढ़ी बनकर न रह जाए। यज्ञ ही रूढ़ी बनकर रह गया तो यह वेद का ह्रास हो जायेगा, ऐसा न हो जाये। वास्तव में ऐसा सम्भव तो नहीं है क्योंकि समय-समय पर महापुरुषों का आगमन होता रहा है। महापुरुषों के आगमनों से वह रूढ़ी नहीं बनती अथवा रूढ़ी बनने में कोई आश्चर्य भी नहीं क्योंकि समय-समय पर महापुरुषों ने जिस आदेश को समाज को दिया उस आदेश से समाज दूरी हो गया। जब दूरी हो जाता है तो वह रूढ़ी बन जाता है। इसीलिए जो महापुरुषों ने आदेश दिया है उन आदेशों से दूरी नहीं होना चाहिए। अपने कर्मकाण्ड को निश्चित बना देना चाहिए। मैं भविष्य का विचार प्रकट नहीं करना चाहता परन्तु रूढ़ी न बन जाये। रूढ़ी को नष्ट करने के लिए मानव का एक समाज होना चाहिए और वह यज्ञों के ऊपर अनुसंधान करने वाला हो। जिससे हम संसार को यह संदेश दे सकें कि उस वेदी के नीचे आ करके तुम ने जो नाना प्रकार के दूषित अणु एकत्रित कर लिए हैं उन अणुओं का यहां विनाश हो सकता है तो यह यज्ञ की सुगन्धि से ही हो सकता है।

यहां संसार में विज्ञान समय-समय पर आता रहा है। समय-समय पर उस विज्ञान ने प्रगति की है। आज का संसार प्रगति कर रहा है, कोई वैज्ञानिक चन्द्रमा पर शयन करने जा रहा है, कोई करने के लिए तत्पर हो रहा है। कोई शुक्र की कल्पना कर रहा है, कोई पृथ्वी और चन्द्रमा के मध्य में कोई स्थान बनाने का विचार कर रहा है। ऐसे विचार वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों में नवीन नहीं हैं क्योंकि यह परम्परा से मानव के मस्तिष्कों में, महापुरुषों के मस्तिष्कों में, राष्ट्र के मस्तिष्कों में यह प्रायः विचार आता रहा है।

देखो, रहा यह वाक्य कि जो मानव धर्म है उसका ह्रास हो रहा है। परन्तु यह धर्म का ह्रास नहीं है क्योंकि धर्म किसे कहते हैं ? आज कोई वैज्ञानिक यह नहीं कह रहा है कि मानव को चरित्रहीन हो जाना चाहिए, कोई

वैज्ञानिक यह नहीं कह रहा है कि कर्म नहीं करना चाहिए, कोई वैज्ञानिक यह नहीं कह रहा है कि आज तुम प्रभु को स्वीकार न करो। परन्तु आज का वैज्ञानिक इस वाक्य को उच्चारण कर रहा है कि आज हम इस प्रकृति के गर्भ से संसार में सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार आज मानव इस प्रकार के विचार में आ गया है कि आज हम जो विचार दे रहे हैं, वैज्ञानिक विचार है। यही सर्वोपरि विचार हैं।

हमारे ऋषि मुनियो ने कहा कि यह जो विज्ञान है, परमाणुवाद है, चन्द्रयान है, नाना प्रकार के ज्ञान हैं, यह परमाणुवाद जहां समाप्त होता है वहां आध्यात्मिकवाद का, धर्म का, प्रारम्भ हो जाता है। जब आध्यात्मिक युग में जाने का मानव प्रयास करता है। उस समय यह दृष्टिपात आने लगता है। जब हम उस युग में चले जाते हैं जिस युग में आत्मा को उन्नत बनाया जाता है जिसमें यौगिक अपनी प्रतिक्रियाओं को जानने लगता है जिस काल में यज्ञ की सुगन्धि ही सुगन्धि समाज में ओत-प्रोत हो जाती है, परमाणुवाद को यज्ञ की सुगन्धि निगल जाती है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई समय वर्णन कराया, आज मैं भी उन वाक्यों को वर्णन कराने आ गया हूं कि आज का जो मार्ग है वह मार्ग क्या है ? वेद का जो मार्ग है उसको प्रत्येक मानव को अपनाना है। वह समय निकट आ रहा है जब इस महान यज्ञ की वेदी के नीचे यह सर्वत्र विज्ञान आने वाला है। आज जब हम इस राष्ट्र का भ्रमण करते हैं इस सूक्ष्म शरीर के द्वारा, तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह जो परमाणुवाद आज हमने निश्चय किया है, एकत्रित किया है, इसका अन्त परिणाम क्या होगा ? तो उस समय यह विचारते हैं कि इसका परिणाम केवल अग्नि ही होगी। इसका परिणाम और क्या बनेगा, केवल अग्नि के सिवाय। तब वह कहते हैं इस अग्नि को शान्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए, इस अग्नि को निगलने के लिए कौन सा यत्न होना चाहिए जिससे हम स्वयं अपने-अपने जीवन की सुरक्षा कर सकें।

जब यह विचारते हैं तो वह जो गौ-घृत है, उसमें ऐसा कोई तत्व है जिसमें इस परमाणुवाद को निगलने की शक्ति है। परन्तु अब तक उसका कर्म-काण्ड नहीं आया। उसका जब कर्म-काण्ड आता है तो इस भारत भूमि

में, भारद्वाज वाली भूमि में आकर के उस विद्या को पान करने वाला यह समाज बनेगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है। मैं आज भविष्य की चर्चा नहीं प्रकट कर रहा हूं। वह वाक्य इसलिए उच्चारण कर रहा हूं। क्योंकि यज्ञ एक ऐसा ही कर्म है जो सुगन्धि देता है। दुर्गन्धि नहीं देता। केवल सुगन्धि-ही-सुगन्धि देता है। समाज के लिए जहां यह होने वाला है वहां ऐसा भी किसी काल में प्रतीत होता है कि कुछ ही समय रह रहा है जब यह समाज यह जो जगत अपने कर्मों की अग्नि में भस्म होने वाला है। ऐसा भी प्रतीत होता है क्योंकि यह जो नाना प्रकार का मानव के प्रति घृणा का एक वातावरण अपने हृदय में ओत-प्रोत कर लिया है, इस घृणा का परिणाम भी अग्नि ही होता है। एक राष्ट्र को नष्ट करना चाहता है, एक मानव दूसरे मानव को निगलना चाहता है यह क्या है? स्वार्थ की अग्नि प्रत्येक मानव के हृदय में ओत-प्रोत हो गई है। वह जो स्वार्थ रूपी अग्नि है वह किसी अन्य मानव को नष्ट नहीं करती उसी मानव को नष्ट कर देती है जिस मानव के हृदय में वह अग्नि बलवती हो गई है।

——

द्वितीय खण्ड

द्यौ लोक का घृत

(दिनांक १२-२-१९७१ लाक्षागृह बरनावा में दिया हुआ प्रवचन)

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। हमारे यहां नित्य प्रति कुछ उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परम पिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान माना जाता है। यह जो सर्वत्र जगत है यह उस परम पिता परमात्मा का एक विज्ञान भवन है क्योंकि परमात्मा का जो रचाया हुआ एक महान विज्ञान है वह नित्य प्रति अपना कार्य करता चला जा रहा है।

आज का हमारा वेद का ऋषि क्या आज्ञा करता चला जा रहा था ? मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज का हमारा वेद मन्त्र बहुत सूक्ष्म वार्ता प्रकट कर रहा था। कल यह उच्चारण किया जा रहा था कि अन्तरिक्ष का घृत क्या माना जाता है ? इसके ऊपर हमारा विचार विनिमय चल रहा था, नाना ऋषि मुनियों का विचार अथवा उनका अनुसन्धान प्रायः होता रहता था और नाना टिप्पणियां भी दी हैं। रहा यह वाक्य कि उनके विचारों में, हमारे और भी नाना ऋषियों के विचारों में भिन्नता हो सकती है। उनके शब्दों की जो रचना और वाक्यों का जो सुन्दर विश्लेषण है वह हमारे लिए प्रायः अनुकूल न हो परन्तु उनका विचार एक महान और सार्वभौम हो जाता है। ऋषि कहते ही उसको हैं जो अपने जीवन का सम्बन्ध द्वितीय वाहरीय जगत और अन्तरिक्ष जगत का समन्वय करने वाला होता है। दोनों की जो धारा हैं उनको एक संगम में लाने वाला होता है। संगम का अभिप्राय क्या होता है ?

देखो हमारे यहां मन पर ऋषियों ने बल दिया है कि मन को पवित्र बनाया जाए। मन संसार में उन वनस्पतियों का सूक्ष्म रस कहलाता है जिसकी प्रतिष्ठा द्यौ लोक में रमण करने वाली होती है। यह जो हमारा मन है यह नाना प्रकार की सुन्दर रचनायें रचने वाला है। क्यों रचता है ? इस मन की

धारा क्या है ? मन की जो उपलब्धि मानी जाती है और इसकी जो धारा है वह जो नाना प्रकार की वनस्पतियां होती हैं, नाना जो औषधियां होती हैं, उनका रस परमाणु बन करके अन्तरिक्ष में रमण कर जाते हैं, उसमें उसकी प्रतिष्ठा हो जाती है उसी को हमारे यहां सार्वभौम मन कहा जाता है क्योंकि मन प्राण का और नाना प्रकार की वनस्पतियों का उत्पादन नहीं होगा। जिस प्रकार वसुन्धरा पृथ्वी के गर्भस्थल में नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है परन्तु वह इसीलिए होता है क्योंकि उसमें एक महानता होती है, उसमें सार्वभौमता होती है और विभाजन करने की इसमें एक महान शक्ति होती है क्योंकि प्रकृति के परमाणुओं का मन विभाजन करता रहता है उसी लिए हमारे यहां इस मन को वनस्पतियों का घृत कहा जाता है।

हमारे समीप एक वाक्य आता रहता है 'निदानम प्रेमकृति रूदों भागा, जिस प्रकार पशु जो नाना प्रकार की वनस्पतियों को ग्रहण करता है, जिस यन्त्र में वह मंथन किया जाता है यदि आज हम बाहरीय औषधियों के द्वारा उस घृत को लाना चाहें तो वह किस प्रकार ला सकते हैं। यह हमारे यहां अनुसन्धान का विषय रह जाता है। इसमें महर्षि वायु मुनि महाराज, दालभ्य और महर्षि सौममुनि महाराज इत्यादि का जो विचार है उसे मैं तुम्हें प्रकट करा रहा हूं। आज जब हम नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करते हैं और एकत्रित करके अष्ट कोण यज्ञशाला बनाते हैं और अष्टकोण यज्ञशाला बना करके यज्ञशाला का जो ऊपरी विभाग होता है उसमें देखो हरित, स्वेत और पीत वर्ण के उसमें कीर्ति या अस्वात अप ग्रीह होते हैं। वह जो वनस्पतियां हम यज्ञशाला में परिणत करते हैं, तपाते हैं, तपाने के पश्चात् उनकी धारा बन करके यज्ञशाला में जब उनका अपरात निदान होता है तो उसी निदान के कारण, महानता के कारण हमारे यहां ऐसा माना जाता है कि जिसमें जीवन की एक महान धारा पवित्रता में परिणत की जाती है क्योंकि हमारे यहां यज्ञशाला में एक महानता का सदैव दिग्दर्शन प्रायः होता रहता है जिसके ऊपर हमारा केवल महान विचार के साथ में हमारी मौलिक धारा होती है। उस यज्ञशाला में उस याज्ञिक पुरुष की एक महान धारा में परिणत होने वाला एक विचार होता है। जब मानव यज्ञशाला में परिणत होता है तो उसकी महान धारा एक पवित्रता में परिणत हो जाती है।

आओ मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज का हमारा आचार्य क्या कह रहा है ? हमें विचारना क्या है ? हमें यज्ञ के घृत को विचारना है । जिसके ऊपर मानव को सदैव विचार विनिमय करना है। आज मैं ऋषि मुनियों का विचार देना चाहता हूं और वह क्या कि हमें मन और प्राण की सूक्ष्मता को जानना चाहिए। वह द्यौ लोक में जो नाना प्रकार की वनस्पतियों का रस है यज्ञ के द्वारा हम उसका पात बना सकते हैं और पात बना करके सूर्य की जो नाना किरणें हैं उनको हम अपने में ला सकते हैं । क्योंकि किरणों के द्वारा ही पशु के उस शरीर में प्रायः उसका निदान होता है, महानता में उसकी धारा होती है जिसके ऊपर मानव को एक विचार विनिमय करना होता है ।

हमारे यहां "यज्ञ भूतानां घृतं रूद्रस्य भागा" आचार्य कहता है कि यज्ञ-शाला में याजिक पुरुष जब विराजमान होता है तो सूर्य की किरणों का किस प्रकार निदान किया जाता है ? उसको हम अपने में किस प्रकार धारण कर सकते हैं इसके ऊपर हमें विचार विनिमय करना है। तो वहां वेद का ऋषि कहता है, महर्षि वायु ने कहा है, महर्षि भारद्वाज ने एक वाक्य में कहा है 'सम भव प्रभे अकृतानि रुद्रस्य भागाः' कि नाना प्रकार की सूर्य की किरणों को अपनी श्वांसों की गतियों में लाना चाहते हैं क्योंकि सूर्य की किरणों से नाना प्रकार की किरणों का जन्म होता है, उन किरणों में एक महानता की धारा होती है उन्हीं को लाने के लिए हम सदैव तत्पर रहते हैं जिससे हमारा विचार आचार्यों की दृष्टि में महान माना गया है क्योंकि उसको हम अपने मस्तिष्क की यज्ञशाला में लाना चाहते हैं तो एक महान यौगिक विषय बन जाता है। हमारे यहां योगाचार्यों ने कहा है 'ब्रह्म योगात प्रभा अस्ति सुप्रजाः' माना जो ब्रह्म का निदान करने वाला होता है, ब्रह्म विद्या का निदान करना जानता है। क्योंकि ब्रह्म की विद्या का निदान मन और प्राण के साथ ही होता है । यदि मन और प्राण दोनों को निदान में नहीं ला सकोगे तो जीवन में महानता का कदापि भी दिग्दर्शन नहीं हो सकेगा।

आज प्रत्येक मानव को संसार में यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ की प्रतिभा क्या कह रही है कि आज हमें नाना प्रकार का अनुसन्धान करना है क्योंकि यह जो जगत है यह परमात्मा का एक भव्य भवन है, यज्ञशाला, यही तो ब्रह्म विद्या विचारने का एक 'यज्ञ प्रभे कृतव्यों' इसको ब्रह्म भवन कहा जाता है। इसमें जो मानव अनुसन्धान कर लेता है, जितना अपने जीवन का निदान कर

लेता है, जितना अपने हृदय को स्वच्छ बना लेता है, जितनी मन की धारा को ऊंचा बना लेता है उतनी ही उसकी मन की धारा पवित्र बन करके द्यौ लोकों में उनकी प्रतिष्ठा हो जाती है। ऐसा हमारे यहां वेद का ऋति कहता है 'यज्ञं भूतानां प्रभाकृति रूद्राः सन्ति लोके' आचार्य कहते हैं, महर्षि भारद्वाज ने यह कहा है कि यजमान के हृदय की जितनी शुद्धता होगी, जितनी महानता उसके द्वारा होगी उतनी ही प्रत्येक आहुति (उसका उच्चारण किया हुआ जो शब्द है उसी को आहुति कहा जाता है) अग्नि का स्वरूप माना गया है। हमारे यहां कल के वाक्यों में उच्चारण किया जा रहा था कि ब्रह्म बृहाम् ब्रह्म लोकः मानो अग्नि को हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है। उद्गाता का अभिप्राय केवल अग्नि और वायु दोनों की पुट हुआ करती है उस समय वायु उद्‌गाता कहलाता है और अग्नि अध्वर्यु कहलाता है। अध्वर्यु का क्या अभिप्राय है? वह मानो वायु की सहकारिता से ही, वायु के मिलाप से ही अध्वर्यु कहलाता है और वायु अग्नि के साथ में मिश्रण होने से ही उसको हमारे यहां उद्गाता कहा जाता है क्योंकि वायु ही तो सामगान गाती है। उद्गाता ही तो यज्ञशाला में उद्गीत गाता है। यज्ञशाला में परिणत होता हुआ महानता को प्राप्त होता रहता है।

हमारे यहां अग्नि को ही 'अग्नि प्रभा कृत्रं रुद्रस्यभागा असवतो लोकं मम वाचं प्राणी' आत्मा को हमारे यहां यजमान कहा गया है क्योंकि आत्मा ही इसका कृत कहलाया गया है। आत्मा के साथ ही 'यजंभूतस्य प्रभा' क्योंकि संसार में आत्मा के कारण मन प्रकृति का जितना परमाणुवाद है, जितना अणुवाद है वह सब आत्मा के आश्रित होता हुआ इस शरीर में गति कर रहा है। यह मानवीय गति इसी के आश्रित हो करके रमण किया करती है।

ब्रह्म की चेतना संसार में अपना-अपना कार्य कर रही है। ब्रह्म विद्या ही मानव को ऊंचा बनाती है, राष्ट्र को ऊंचा बनाती है और राष्ट्र में धर्म को ला देती है। इसीलिए आज हमें ब्रह्म विद्या की आवश्यकता है। जब प्रत्येक मानव धर्मनिष्ठ और ब्रह्मनिष्ठ होता है उसी काल में उसकी विचारधारा में एक महानता का दिग्दर्शन, महानता उसके हृदय में प्रतिष्ठित हो जाती है जिससे वह महान कहलाता है। मानव की जो वाणी होती है उसका सम्बन्ध अग्नि से होता है, इसीलिए हमारे यहां किसी-किसी ऋषि ने अग्नि को भी उद्‌गाता कहा है, वायु को अध्वर्यु कहा परन्तु इसका विचार हम किसी काल

में वेद पाठ आयेग तो प्रकट करेंगे। आज का हमारा यह वाक्य आज्ञा नहीं दे रहा है आज तो हम प्रभु की याचना कर रहे हैं कि हे प्रभु ! तू स्वयं यज्ञ है, तेरी महानता इन वेदों में परिणत हो रही है, वेद की जो अनुपम धारा है, वेद का जो प्रकाश मानव के अन्तःकरण को पवित्र बनाता है, क्योंकि वेद की जो अनुपमता है, ब्रह्म विद्या है, महानता है, उसमें उसका एक-एक शब्द पक्षपात से रहित है, उसी को तो ब्रह्मविद्या कहते हैं। क्योंकि परमात्मा रूढ़ी नहीं होता, इसी लिए वेद भी रूढ़ी (अज्ञान) नहीं है। इसीलिए वेद के अनुसार मानव को अपने जीवन को ऊंचा बनाना चाहिए। जो मानव रूढ़ियों में परिणत हो जाते हैं उनके जीवनों का विनाश हो जाता है, उनका जो मानसिक संकल्प होता है उसकी धाराओं में भिन्नता आ जाती है।

आज हमारा वेद पाठ क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए यज्ञशाला में परिणत होते हुए अपने विचारों का यज्ञ करते चले जायें। नाना प्रकार का संकल्प हो, संकल्प के साथ में हमारा एक मानसिक संकल्प हो, प्राण का ही उसमें निदान हो, उसके पश्चात् जब हम आहुति देते हैं वह आहुति द्यौ लोक को प्राप्त होती है, देवता गण उनको प्राप्त करते हैं और देवता जब तृप्त होते हैं तो राष्ट्रवाद को क्या समाज को पवित्र बनाते चले जाते हैं क्योंकि यह जितना जगत है यह सब परमाणुओं की ही रचना है। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं यह उच्चारण कर सकूंगा कि द्यौ लोक का जो घृत है उसमें कितने सूक्ष्म परमाणु होते हैं और वह परमाणु जब अग्नि उद्‌गाता बन करके और वायु अध्वर्यु बन करके जब उसका शाकल्य उनमें प्रदान किया जाता है तो द्यौ लोक में कितनी महान गति होती है। जितना मानव का हृदय स्वच्छ और पवित्र होता है, ममता से रहित होता है, क्रोध से रहित होता है, नाना प्रकार की विडम्बनाओं से रहित होता है उतना ही द्यौ लोक को मानव का संकलन प्राप्त होता चला जाता है।

——

द्यौ लोक को समिधाएं एवं वृष्टि यज्ञ

(दिनांक १३-२-७१ को लाक्षागृह (बरनावत) बरनावा पर दिया हुआ प्रवचन)

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया हमारे यहां जो पठन पाठन का प्रायः क्रम होता है वह सदैव विचित्रता में परिणत माना गया है। आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था इसके ऊपर हमें विचार विनिमय करना है। मैं कल के अपने उस महान विषय को लेना चाहता हूं जो आज हमारे वेद मन्त्रों द्वारा प्रतिपादन किया जा रहा था। हमारे यहां ऋषि मुनियों के दो प्रकार के विचार माने गए हैं। कहीं-कहीं तो आचार्यों ने वायु को उद्गाता माना है और किन्हीं आचार्यों ने अग्नि को उद्गाता माना है परन्तु ऋषियों का जो एक विचार है उसका सन्निधान कर लेना चाहिए। दोनों को विचार करके उसका मिलान कर लेना चाहिए।

यहां वायु मुनि महाराज ने और भी नाना आचार्यों ने अपने शब्दों में कहा है कि यदि हम संसार में उज्ज्वल स्वरूप को लेकर के चलते हैं, महानता पर विचार विनिमय करते हैं तो हमारे यहां वायु और अग्नि दोनों की सहकारिता और मिलान होने पर वह एक उद्गाता की श्रेणी, उद्गाता की कृति प्रतिपादिता मानी गई है परन्तु जहां मैं यह विचारने लगता हूं कि वेद का ऋषि इस सम्बन्ध में क्या कहता है तो वेद का ऋषि कहता है 'वायु उद्-गाता प्रभे आकृति सुप्रजाः' क्योंकि वायु को उद्गाता ही माना है। इसमें नाना प्रकार का भेदन माना गया है। ऋषि कहते हैं कि नाभि केन्द्र में जब एक प्रकार का प्रवाहकृत होने लगता है तो उस समय शब्द का उद्गार उत्पन्न होता है क्योंकि वाणी का जो स्वरूप है वह अग्नि माना गया है। क्योंकि व्यष्टि-समष्टि में जब हम पहुंच जाते हैं और विचरने लगते हैं तो इस शरीर में जो वाणी है और वह लोक में अग्नि मानी गई है। तो इसलिए अग्नि से उच्चारण किये हुए शब्द को ही हमारे यहां उद्गाता कहा जाता है। इसमें एक भिन्नता आ जाती है क्योंकि प्राण का सन्निधान जब तक अग्नि के

साथ नहीं होगा तो किसी शब्द की उत्पत्ति होना असम्भव हो जाता है जैसे हमारे इस सूक्ष्म से पिण्ड में ब्रह्मरन्द्र स्थान माना गया है जिसमें नाना सूक्ष्म वाहक नाड़ियां होती हैं। एक नाड़ी सूर्यकेतु नाम की होती है जिसका सम्बन्ध सूर्य से होता है। जिस समय उस नाड़ी का चक्र चलता है तो उसका निर्माण मेरे प्यारे प्रभू ने इस प्रकार किया है कि जब वह अपने स्थान से दूसरे स्थान पर केवल प्राण का संयम करने से, मन का सन्निधान करने से मन और प्राण दोनों का मिलान करने से अग्नि प्रदीप्त होती है। वह जो हमारी ब्रह्मरन्द्र वाली अग्नि जिसको हमारे यहां द्यौ लोक कहा जाता है जब इन दोनों का मिलान होता है उस नाना प्रकार की ब्रह्मरन्द्र रूपी जो यज्ञवेदी है जब उसमें घृत की आहुति देता है तो अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। कौन-सी अग्नि? वह जो द्यौ लोक की अग्नि है उसका जो सूक्ष्म रूप है जब वह घृत बन कर घृत की आहुति देते हैं तो उस समय वह अग्नि प्रदीप्त हो करके वह जो सूर्यकेतु नाम की नाड़ी है उसमें एक गति उत्पन्न होती है। एक नाड़ी ऐसी है जिसका सम्बन्ध आरुणी मण्डल से होता है इसी प्रकार उसके साथ में एक नाड़ी इस प्रकार की है जिसका सम्बन्ध ध्रुव मण्डल से होता है। तो यहां आरूणी और ध्रुव और सूर्य इन तीनों नाड़ियों का चक्र चलता है इस अग्नि के द्वारा वह यज्ञवेदी में जो यह तीन समिधा होती हैं जब यह तीन समिधाएं यज्ञिक पुरुष की जागरूक हो जाती हैं तो सूर्य मण्डल, आरूणी मण्डल और ध्रुव मण्डल का रहन-सहन, वहां का विचार योगी स्वतः जान लेता है।

आज मैं इन वाक्यों को गम्भीर नहीं बनाना चाहता। केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि उस अग्नि की आहुति हम कैसे दे सकेंगे जिसने इन तीनों मण्डलों को जान जायें। देखो वह तीन समिधा कहलाती हैं जो मानव के ब्रह्मरन्द्र में होती हैं। हे ब्रह्मचारी! हे याज्ञिक पुरुष! यदि तू यज्ञ का अधिकारी बनना चाहता है और यज्ञ के द्वारा तू दूसरे लोकों में रमण करना चाहता है और नाना प्रकार के भौतिक परमाणुवाद को जानना चाहता है तो मुझे मन और प्राण दोनों को सम्बन्धित करके दोनों को मन्थन करके, जो मन और प्राण का सूक्ष्म रूप देता है, वह ब्रह्मचारी जिसको हमारे यहां महा तत्त्व कहा जाता है जिसको प्रकृति का बहुत ही सूक्ष्म स्वरूप माना गया है जब उसकी आहुति दी जाती है अरे! कौन देता है। महर्षि भारद्वाज जसे ऋषि दिया करते हैं उस आहुति को, यहां महर्षि

भृगु जैसे आचार्य दिया करते हैं, व्यास और सुखदेव जैसे मुनि दिया करते हैं जिनका जीवन एक महानता में परिणत माना गया है।

मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता हूं। मैंने तुम्हें तीन समिधाओं की विशेषता प्रकट की है। तीन समिधाएं यह हैं और तीन समिधाएं इनके साथ और होती हैं। उन समिधाओं में से एक तो इस पृथ्वी मण्डल की होती है, एक समिधा अन्तरिक्ष मण्डल की होती है और एक समिधा द्यौ मण्डल की होती है। यह तीन समिधा हैं जिनको स्वान, अनुतनी और कृति कहते हैं। इनकी ब्रह्मरन्द्र में जागरुकता होने के कारण तीन लोकों की वार्ता जानने वाला याज्ञिक बन जाता है। यह हमारी आध्यात्मिक समिधाओं का वर्णन होता चला जा रहा है। आध्यात्मिक वेत्ताओं ने कहा है, आदि ऋषियों ने कहा है कि हमें इनके ऊपर बहुत अनुसन्धान करना है, जिससे हमारे जीवन में महानता की एक ऐसी तरंग उत्पन्न हो जाए जिससे हमारा यज्ञ, हमारी मानवता, हमारे ब्रह्मरन्द्र में विशाल गति उत्पन्न हो करके हम भी उन लोकों को प्राप्त होते चले जायें।

वाक्य उच्चारण कनने का हमारा अभिप्राय क्या है कि आज हम उन चार समिधाओं को और जानना चाहते हैं जिनकी हमें आहुति देनी है। वह चार समिधायें यह हैं कि चार नाड़ियां इस प्रकार की हैं हमारे ब्रह्मरन्ध्र में जिनको स्वाति, अगेलनी, क्रांतनी और रेनकेतु कहते हैं। जब हम इनको जान लेते हैं तो जहां इन नाड़ियों का मिलान होता है और मिलान करके चार आहुति बन करके एक आहुति हमें अप्रेत को प्राप्त हो जाती है, दशम को प्राप्त हो जाती है। और तीन जो समिधा हैं उनका जहां दसों समिधाओं का मिलान हो करके चार समिधायें इनके ऊपर छा जाती हैं। छा जाने के पश्चात् हृदय रूपी जो हमारी यज्ञवेदी है उसमें उन समिधाओं की आहुति लगा करके, अग्नि बन करके एक महान गति होती है, उसमें जो संसार के नाना लोक लोकान्तर समाहित हो जाते हैं। उसमें शिव-पार्वती अपना नृत्य करने लगते हैं। माता पार्वती प्रकृति है और ब्रह्म (शिव) की आभा बन करके हृदय रूपी यज्ञ वेदी में जब नृत्य होने लगता है तो वह अग्नि प्रदीप्त हो करके मन और प्राण की जब सूक्ष्म घृत रूपी आहुति लगती है तो उस समय योगी का हृदय इन सब लोक लोकान्तरों के जानने वाला बन जाता है और वह पुरुष ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए संसार में लोकप्रिय हो जाता

है और द्यौ लोक में जो महान विशेष आत्माएं भ्रमण करती रहती हैं उनसे भी ऊंची स्वर्ग की आत्माओं को प्राप्त हो जाता है।

कल मैंने यह वाक्य प्रकट किया था कि हम सूर्य की किरणों को अपने में धारण करना चाहते हैं। मेरा परम्परागतों से यह विश्वास रहा है क्योंकि हमने भी अनुसन्धान किया है। यह अनुसन्धान इस प्रकार के होते हैं कि बारह-बारह वर्ष तक नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान करने से बुद्धि में इनका दिग्दर्शन होता है। एक समय आचार्यों ने मुझे निर्णय कराया कि तुम इसके ऊपर अनुसन्धान करो। तो मुझे परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से वह सौभाग्य प्राप्त हुआ। 'यज्ञ ब्रह्मलोके प्रभा अस्ति सुप्रजा' इस विषय पर जिससे हम सूर्य की किरणों को अपने में धारण कर सकें। उनमें कितने प्रकार के परमाणु होते हैं, वायु की गति कितनी होती है, सूर्य की किरणों की कितनी गति होती है और कितने सूक्ष्म परमाणु का आगम्य होता है। ऋषि मुनियों ने यह कहा कि आप इसके ऊपर अनुसन्धान क्यों नहीं करते। क्योंकि इससे वृष्टि होती है। वृष्टि यज्ञ वही करा सकता है, जो सूर्य की तपस्या करता हुआ सूर्य की किरणों को शक्ति के द्वारा संकल्प अपने में धारण करके और उन नाना प्रकार की वनस्पतियों को जान जाये। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें पृथ्वी के जल को अपने में शोषण कर लेती हैं, अन्तरिक्ष में वह परमाणु विराजमान हो जाते हैं, अन्त में समुद्र का समुद्र ओत-प्रोत हो जाता है इसी प्रकार उन किरणों को जान करके संकल्प बना करके और नाना प्रकार की वनस्पतियां जान करके जो याज्ञिक यज्ञ करता है यह भौतिक यज्ञ है। उसमें एक सेनमुक एक औषधि है, एक सेल खण्डा होती है, शंखहुलो होती है, मामकेतु होती है, स्वांगनी होती है, वातकेतु होती है, किरकल होती है, आभूषणी होती है और जापवित्र होती है, जायफल होता है, जमन केतु होती है, आस्वानी होती है, लक्ष्मण बूटी होती है, भ्रानकेतु होती है, अशेव-गनी होती है, पीपल की दाह (दाड़ी) होती है, पीपल का पंचांग होता है, वट वृक्ष का पंचांग होता है और यह देवदास का पंचाग होता है, मामधानियों का पंचांग होता है, नाना प्रकार की औषधियां होती हैं उनकी गणना करने में समय लगेगा परन्तु इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। मेरे महानन्द जी भी अपने वाक्य उच्चारण करने के लिए यहां प्रतीक्षा कर रहे हैं। दण्डकेतु का एक पंचांग होता है इसी प्रकार सेलकेतु एक वृक्ष होता है जो प्रायः पर्वतों

में प्राप्त होता है उसका पंचांग होता है। मानधाता एक वृक्ष होता है, उसका पंचांग होता है, गुलकेतु एक वृक्ष होता है उसका पंचांग होता है। इस प्रकार की औषधियां एकत्रित करके और जो गौ घृत होता है और गौ घृत को भी सूर्य की किरणों में तपाया जाता है, तपाने के पश्चात् उसको अग्नि में तृप्त करके उस घृत के साथ में उस अग्नि में एक सोमरस बनाया जाता है। वह सोमरस कैसा बनाया जाता है ? उसमें एक रुगणी औषध होती है और मुनि अनन्त केतु एक औषधि होती है, एक आनन्दकेतु औषधि होती है इन तीनों को अग्नि में तपा करके पात बनाया जाता है। पात बना करके इसके देनकेतु कहते हैं, गन्दाशील भी कहते हैं और किसनानी भी कहते हैं, केसल होती है, कस्तूरकान होता है, आभागन होता है, इन नाना प्रकार की औषधियों से पात बनाया जाता है। उस पात में यह विशेषता होती है कि जो आहुति इन औषधियों को लेकर के जाती है। एक ऋतु का अन्न होता है, ऋतु का जो भी अन्न हो। एक ऋतु का फल होता है इन सब की एक सामग्री बना करके यजमान भी संकलपवादी हो, श्रोतागण भी संकलपवादी हो। ब्राह्मण भी ऊंचा हो, वह उस निदान को अच्छी प्रकार जानता हो, कर्मकाण्ड भी उसका एक विशेष होता है, कर्मकाण्ड की पद्धति यह है कि उसमें पीपल दाख अन्नेकेतु नाना प्रकार के वृक्षों की समिधा होती है। उनको एकत्रित करके जब हम यज्ञ करते हैं तो उससे वृष्टि यज्ञ हो जाता है। तो मैंने इसका बहुत अनुसन्धान किया। मुझे बारह वर्ष तक निन्द्रा नहीं आ सकी इस अनुसन्धान में। जब यह अनुसन्धान किया, औषधियों को लाया गया बेटा ! एक सेनकेतु औषध होती है, उसका पंचांग होता है। उसकी छाल को लिया जाए तो बड़ी स्वादिष्ट और यदि गूदेको लिया जाए तो वह रसना को बहुत प्रबल कर देता है उसमें इतनी अग्नि होती है, इतनी प्राण शक्ति होती है और उसका जो पत्ता होता है उसको घ्राण के द्वारा सूंघने से ही मानो जिह्वा का शोधन समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार उसका जो पंचांग होता है, उसकी पांचों वस्तुएं ले करके उसको सामग्री में परिणत किया जाता हूं। इसी प्रकार उसमें एक सूर्य घृत बनाया जाता है। सूर्य घृत किसे कहते हैं ? सूर्य घृत कहते हैं वेद का ऋषि कहता 'सन्मील अनेन अन्य आभूषणां अमृत नेमकेतु रुद्रः' कि मानव को अपने संकल्प को दृढ़ बनाना है क्योंकि वह जो संकल्प है, जिस कार्य को कर रहे हो उसमें निष्ठा संकल्प और यजमान चरित्रवान और संस्कारवादी होना चाहिए। जब वह यज्ञ करेगा तो उसके पश्चात् यहां वृष्टि

यज्ञ हो जाता है।

मैं यज्ञों के सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूं। आज मैं यह उच्चारण कर रहा था कि यह जो यज्ञशाला है इस यज्ञशाला में हमें आहुति देनी है और आहुति दे करके यज्ञ को पवित्र बनाना है, सुगन्धिदायक बनाना है, महान बनाना है जिससे यह संसार ऊंचा बनता हुआ और इन यज्ञ जैसे कार्यों को जैसा महानन्द जी ने कहा है कि इसको पाखण्ड कहा जाता है तो बेटा ! पाखण्ड उस काल में कहा जाता है अब मानव परमाणुवाद का केवल इस गति में न लेकर के और भौतिकवाद इतना उन्नत आप्रभे अस्ति हो जाता है और ब्राह्मण वेद पाठी रहते नहीं, ब्राह्मण अनुसन्धान वेत्ता नहीं रहते तो उनके ज्ञान का अपमान प्रायः होता रहता है क्योंकि मुझे स्मरण है कि एक समय प्रायः मैं नग्न रहता था अपने काल में। वह पुरातन काल था आज तो मैं इस आपत्ति काल में कोई वाक्य प्रकट करने वाला नहीं परन्तु नग्न रहता था जब नग्न को ले जाया जाता था कजली वनों से तो इस काल में जहां जाते, वैज्ञानिक भी यह प्रश्न करते थे कि महाराज हमें अमुक धातु का निर्णय कराइए जिससे हम वायुयान बना लें, जिससे हम वरुणास्त्र बना लें, जिससे जलाशय अस्त्रों का निर्माण हो जाये जिसको वरुणास्त्र भी कहते हैं। सामनी यन्त्र होता है जो अपने अस्त्रों को शान्त करने वाला होता है। आज तो मैं इस सम्बन्ध में कोई वाक्य प्रकट करने वाला नहीं। मुझे भी इस अनुसन्धान में सौभाग्य प्राप्त होता रहा है।

——

॥ ओ३म् ॥

यज्ञ की सफलता के लिए होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा के स्वरूप का वर्णन

१९ फरवरी १९७०, लाक्षागृह (वरनावत) बरनावा (मेरठ)

देखो मुनिवरो। आज हम तुम्हारे समक्ष कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परा से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस वेद वाणी में उस परम पिता परमात्मा की प्रतिभा सदैव रमण करती रहती है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि मानवीय पद्धति उस महान पवित्र यज्ञ से सुगठित रहने वाली है। मानव का जीवन भी एक सुन्दर यज्ञवेदी ही माना गया है क्योंकि "यज्ञम् भूषणाम् प्रतप्रने गीत वन्दना मामः"। मुनिवरो! जैसे मौलिक जगत में हम यज्ञ में परणित होते हैं इसी प्रकार हमारा आध्यात्मिक और आन्तरिक जिसे कहा जाता है वह एक यज्ञ रूप ही माना गया है। हमारे यहां परम्परा से ही उस मनोहर प्रभु की महिमा का गुणगान और उस मनोहर वेद वाणी में जो आनन्द कहलाया गया है, जो आनन्द का स्रोत माना है।

हमारे यहां परम्परा से ही वह हृदयरूपी सुन्दर यज्ञ वेदी है जिसमें योगीजन ध्यानावस्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार जो याज्ञिक पुरुष होते हैं, मुनिवरो! हमें वास्तव में याज्ञिक बनना है, जगत् में हम बाह्य और आन्तरिक दोनों का मिलान करना चाहते हैं। हमारा यह विचार परम्परा से रहा है क्योंकि हमारे यहां वेदों का जो ज्ञान है वह आनन्दमय कहलाया गया है।

मुनिवरो! यज्ञशाला में चार स्थान होते हैं। सबसे प्रथम ब्रह्मा का होता है, उसके पश्चात् अध्वर्यु और यजमान का होता है परन्तु हमारे यहां अध्वर्यु की बड़ी सुन्दर मीमांसा आती है। अध्वर्यु उसे कहते हैं, जिसकी ऊर्ध्वा-गति हो जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत से रहने वाला हो, जिसका उद्गम और

ऊर्ध्वा विचार हो, वह इदन्नमम् सदैव उच्चारण करने वाला हो। क्योंकि इदन्नमम् का अभिप्राय यह कि संसार में "मैं" उच्चारण करने का अधिकार किसी काल में भी नहीं होता। हमारे यहां जो इदन्नमम् वाक्य उच्चारण किया जाता है, इसका आशय यह है कि संसार में कोई वस्तु किसी की हो नहीं पाती। क्योंकि यदि हम ब्रह्मवेत्ताओं के समीप जाते हैं और ब्रह्म और ऊंचे वैज्ञानिक रूपों से क्या हम दार्शनिक रूपों से इसका निरूपण करना चाहते हैं और यह विनिमय करना चाहते हैं कि सर्व सम्पदा मेरी भी नहीं है। क्योंकि इस सम्पदा का जो स्वामित्व है यह जो सम्पदा है इदन्नमम् यह मेरी नहीं हो सकती। क्योंकि यह जो भी कुछ है सब यज्ञ का रूप माना गया है। ऐसे विचारों वाला है उसे अध्वर्यु बनाया जाता है यज्ञशाला में। क्योंकि उसके मन में उसके हृदय में कितनी व्यापता होती है उसके मन में धारणा होती है कि यह सब कुछ मेरा नहीं हो सकता।

जो भी कुछ द्रव्य पदार्थ है, औषधि पदार्थ है यदि इसके मूल को विचारा जाएगा इसका मूल क्या है? इसकी उत्पत्ति क्या है? तो मुनिवरो! उत्पत्ति और उसका जो विनाश हैं वह केवल हमें आभास मात्र प्रतीत हो रहा हैं। हमारे यहां जैसे कहा जाता है कि औषधियों का मूल कोन है? तो कहा है कि जल है। जल का मूल कौन है अग्नि है। अग्नि का मूल कौन है? वायु है। वायु का मूल अन्तरिक्ष को माना है। तो मुनिवरो? जो अन्तरिक्ष से सुन्दर वृष्टि होती है इसी से नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता रहता है। इन औषधियों को एकत्रित किया जाता है। उन्हीं के द्वारा यज्ञशाला में अध्वर्यु औषधियों का स्वामीवत बन करके उसको अच्छी प्रकार वितरण करता है और उसको 'इदन्नमम्' सबको यज्ञ रूप स्वीकार करके सबको ही अर्पित कर देता है जो जैसा जिसका भाग होता है।

हमारे यहां ऐसा माना गया है कि हमारे मानव शरीर में बेटा, एक समान नाम का प्राण होता है। उसका सम्बन्ध उदान नाम के प्राण से होता है। जब उदान नाम का प्राण उसको त्याग देता है, त्याग देने के पश्चात् उस प्रतिभा में रमण करने लगता है, जो ज्ञान की कृतिक कहलाई गई है, वह उसको अपने में ही अर्पित स्वीकार करता हुआ, उसको अपने में परिणत कर लेता है। मुनिवरो! जैसी उसकी मौलिकता है वैसे उसका वितरण भी माना

गया है। जब सामान्य प्राण को उदान त्याग देता है तो उदान अपना वितरण करने वाला अध्वर्यु का कार्य करता है। इसी प्रकार यज्ञशाला में जो अध्वर्यु होता है उसका एक महान् और पवित्र आसन कहलाया गया है। जो त्याग और तपस्या में परिणत होता है। जिसकी भावना में एक वेदोक्त वार्ता प्रकट रहती है। वह संसार में एक महान् कहलाया गया है!

मेरे प्यारे ऋषिवरो! मैंने इससे पूर्व शब्दों में उच्चारण करते हुए कहा था कि मेरी बालिका यह कहा करती थी कि यज्ञशाला में भगवान् अध्वर्यु कौन होता है? मैंने उसको उच्चारण करते हुए कहा कि जो द्रव्य का सामग्री का स्वामी होता है, नाना प्रकार की जो सामग्री होती है औषधियों का जो समूह होता है उसका नाम ही तो सामग्री कहा जाता है, उसका जो अधिपति होता है उसको अध्वर्यु कहा जाता है। जैसे परोपकार के लिए वनस्पतियों का जन्म होता है ऐसे ही अध्वर्यु होता है! उसका भी ऐसा ही विचार होता है, ऐसा ही त्याग होता है। उसका अपने लिए कुछ नहीं होता, "इदन्नमम्" में उसकी प्रवृत्ति परिणत हो जाती है।

मेरी बालिका ने कहा कि भगवन् मैं इससे सन्तुष्ट नहीं हूं। इतनी विवेचनासे मेरे हृदय में सन्तुष्टि नहीं हुई। तब मुनिवरो! कहा कि अध्वर्यु कहते हैं जो मानव नाना प्रकार की औषधियों को परमात्मा का मूलक स्वीकार करके और उनमें जो स्थूलत्व है और उनमें जो 'सागमस्रवे' है वह सब परमात्मा को स्वीकार करके जो अर्पित करता है। जैसे ब्रह्म का यज्ञ हो ही रहा है इसी प्रकार वह यज्ञ में साकल्य को अर्पित कराने वाला कहलाता है। इसलिए उसको हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है।

बालिका ने कहा कि कदापि नहीं भवगन्! में इसको स्वीकार नहीं कर पाऊंगी। क्योंकि मेरा हृदय इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। तब यह कहा गया कि अध्वर्यु उसे कहा जाता है जो उदगादप्रवे गच्छतम् ब्रह्म' जो आत्मवेत्ता, आत्मज्ञान में जो नाना प्रकार की इन्द्रियां हैं इनको और ब्राह्य जगत् की जो सामग्री है, इन दोनों विषयों की सामग्री बना लेता है। जैसे अपने विषयों की सामग्री बनाई जाती है, उसके अनुकूल वस्तुओं की सामग्री बना करके उसको ज्ञान रूपी अर्थात् आत्मा रूपी अग्नि में, ब्रह्म रूपी अग्नि में, ब्रह्मज्ञान रूपी

प्रदीप्त अग्नि का जो प्रवाह चल रहा है उस अग्नि में जो आहुति अर्पित करने वाला है उसी को हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है। इसलिए हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि जो ब्रह्मवेत्ता होता है, ब्रह्म में जिसकी निष्ठा होती है, जिसकी ऊर्ध्वा गति बन जाती है। उसे हे पुत्री ! संसार में ऊर्ध्वा गति वाला हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है।

मेरी वालिका का ने कहा प्रभु इसमें मेरी सन्तुष्टि नहीं हुई। मैं और भी कुछ चाहती हूं। इसकी विवेचना करते हुए उत्तर में आया। हे बालिका ! अध्वर्यु उसे कहते हैं जिसका व्यापक हृदय हो जाता है, जैसे नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं और वे संसार में दूसरों के लिए हुआ करती हैं अपने लिए 'इदन्नसम्' में वे सन्तुष्ट रहते हैं। इसी प्रकार जो अध्वर्यु होता है वह ब्रह्मवेत्ता बनता हुआ, ब्रह्म में परिणत होता हुआ, अपनी जो इन्द्रियाँ हैं इन पर भी मेरा कोई अधिकार नहीं है क्योंति इनसे तो मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करना है, इनकी सामग्री वना करके इन के विषयों को यज्ञशाला में आहुति देने वाले को हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है।

तब बालिका ने कहा प्रभु आप तो एक वाक्य को रूपान्तर करते रहते हैं। उसी वाक्य को किसी न किसी रूप में लाते रहते हैं। मुझे कोई नवीन व्याख्या कीजिए। इसकी तब मुनिवरो ! जैसा वेद मन्त्र में आया, वेद ने कहा 'अर्ध्वयु घृतानम् प्रवे गच्चन्तु रूद्रो', हे बालिका ! अध्वर्यु उसे कहा जाता जो यजमान, ब्रह्मा होता इन सबकी प्रवृत्तियों को जानता हो। वह ब्रह्मत्व में रमण करने वाला हो और ब्रह्म में जिसकी निष्ठा हो गई हो, हृदय जिसका अगमय बन गया हो, उसी को हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है।

बालिका ने कहा प्रभु ! इससे मेरी सन्तुष्टि नहीं हुई। तब वहां एक वाक्य आया, तो बालिका तुम निर्णय कर दो कि हमारे यहां अध्वर्यु किसे कहा जाता है ? क्योंकि मैं तो इतना ही जानता था, जितना मैंने निर्णय कर दिया। परन्तु तब बालिका ने कहा कि प्रभु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अध्वयुं उसे कहते हैं संसार में जिसके द्वारा किसी प्रकार का भी भय नहीं होता और उसके लिए प्राणीमात्र एक ही आत्म, देखो 'सर्वे भूतेषु' बन जाता है, मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है। जब यह वाक्य आया कि 'सर्वे भूतेषु' जो

सब भूत प्राणियों में एक ब्रह्म की चेतना स्वीकार करने वाला हो इसको हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है। वाक्य उच्चारण करके शान्त हो गए।

द्वितीय वाक्य आया कि भगवन् संसार में हमारे यहां यज्ञशाला में यज्ञ-वेदी पर विराजमान होने वाला जो उद्गाता है जो उद्गान गाता है उद्गाता किसे कहा जाता है ? तब मुनिवरो ! कहा कि उद्गाता कहते हैं कि जो गान गाता है, गान गाने वाला है। वेदों का स्वर सहित, जटा-पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग का पाठ उदात्त और अनुदात्त आदि नाना प्रकार से जो वेद मन्त्रों का पठन-पाठन करता है वह हमारे यहां उद्गाता कहलाया गया है।

उन्होंने कहा भगवन् ! और कोई इसकी मीमांसा हो। तब यह कहा कि उद्गाता उसे कहा जाता है जो उद्गान गाने वाला हो जो ऊर्ध्वा गति वाला गान गाने वाला हो। ध्रुवा नहीं, जो ऊर्ध्वा गति वाला गान गाने वाला हो। कैसा गान ? जैसे परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ऋत और सत् के ऊपर अपना विचार व्यक्त किया था। ऋत और सत् दोनों ही उसमें परिणत रहे। दोनों में उसकी विचित्रता सदैव विराजमान रही। उसी को हमारे यहां उद्गाता कहा जाता है। जो उद्गान गाने वाला हो जो उद्गमता देने वाला हो 'उद्गमनम्भे व्रतानम्' जो आत्मा से और हृदय से गान गाता है। क्योंकि आत्मा का, हृदय का जो गान होता है वह मुनिवरो। देखो, पक्षियों के अन्तःकरण को भी पवित्र बना देता है।

हे पुत्री ! मुझे स्मरण आता रहता है। एक समय देखो, महर्षि सोम-केतु ऋषि महाराज ने यह विचारा कि मैं यज्ञ करूंगा। परन्तु जब यज्ञ करने के लिए विचार-विनिमय बनाया, उन्होंने पर्वतों में से नाना प्रकार की औष-धियों को एकत्रित किया। सामग्री बनाई, सामग्री बना करके उनके द्वारा एक कामधेनु गौ थी उसका घृत इत्यादि एकत्रित किया। जब यज्ञ करने के लिए तत्पर होने लगे तो उन्होंने जब यज्ञ में उद्गान गाया तो उनमें वहां कोई होता नहीं था। वहां कोई और भी ब्रह्मा नहीं बना। वहां केवल देखो महान् ऋषि का उपदेश चल रहा था और वह भयंकर वनों में सामग्री से यजन कर रहा है, साकल्य की आहुति दे रहा है। उसी वेद वाणी को, हृदय में ही जो वाणी का उच्चारण किया जाता है। उस आहुति को, उद्गाता के वचनों को श्रवण करने, वहां मृगराज आ गए और यज्ञशाला में सुगन्ध को ग्रहण करने वाले

जब मृगराज आ पहुंचे तो उसका हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। ऋषि ने कहा कि आज तो मेरा हृदय बड़ा प्रसन्न हो रहा है। यह विचार उसके मस्तिष्क में महत्ता से ओत-प्रोत थे। जब यज्ञ प्रारम्भ होने लगा तो वहां मृगराज आने लगे और पक्षीगण भी मुग्ध हो गए। अहः! यज्ञ हुआ क्योंकि वहां वृष्टि यज्ञ किया। वहां उनका जो हृदय का उच्चारण किया हुआ जो वचन है वह पक्षी-गणों को ही नहीं, प्रकृति में उसकी वेदना प्रकट होती हुई, उसकी सुगन्ध के द्वारा देवता भी उसे सहन नहीं कर सके। देवताओं ने इसी समय मेघों से वृष्टि का प्रहार मानों मेघों की उत्पत्ति हो गई, जलों का उत्थान हो गया। अहः! अन्दर वृष्टि हो गई। वृष्टि हो जाने के पश्चात् यह विचार आया कि यह उद्गाता कैसा है जिसने उद्गान गाया।

मेरी बालिका ने कहा हे प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूं कि हृदय का उद्गान तो सभी उच्चारण करते हैं। एक मेरी प्यारी माता है परन्तु वह अपने स्नेह और पूर्ववत् अपने प्यारे बालक को व्याकुल हुए को लोरियों का पान करा देती है। तब वह बालक शान्त हो जाता है। शान्त हो जाने के पश्चात् उसको द्वितीय विडम्बना (शंका) उत्पन्न होती है तो भगवन! मैं यह जानना चाहती हूं कि क्या यह जो मृगराज हैं या पक्षीगण हैं उनका हृदय कैसे तपा हुआ होता है जो इस प्रकार का गान गा करके सभी प्रभावित हो जाते हैं और सान्त्वना को प्राप्त होते हैं। उस समय उसका उत्तर देना हमारे लिए स्वाभा-विक बन गया था। हे बालिका! मानव के हृदय को तपाया जाता है। किससे तपाया जाता है? ध्यान और तप के द्वारा तपाया जाता है। यौगिक क्रियाओं के द्वारा तपाया जाता है। मुनिवरो! देखो कैसे तपाया है? जैसे मेरी प्यारी माता अपने गर्भ स्थल में, अपने उदर में बालक को तपा देती है। कौन माता तपाती है? जो माता सुयोग्या होती है वह माता अपने बालक को गर्भस्थल में विचारों से तपा देती है। आहार और व्यवहार से तपा देती है। वह कैसे तपाती है? ब्रह्म का चिन्तन करती है। ब्रह्म का चिन्तन करते हुए अपने बालक को वह अपने उदर में ऊंचा बना देती है। हे मेरी बालिका! तुम्हें यह ज्ञान होना चाहिए कि इसी प्रकार मानव के हृदय को महापुरुषों के द्वारा तपाया जाता है। जैसे माता अपने उदर को तपाती है, गर्भस्थल में तपा देती है बालक को, इसी प्रकार मुनिवरो! महापुरुषों के सत्संग में ही वह ब्रह्मचारी तप जाता है जिसका हृदय इतना महान्, पवित्र बन जाता है वह मृगराज

उसके आधीन बन जाते हैं और पक्षीगण भी मुग्ध हो जाते हैं। उसका कारण यह होता है कि जिस मानव की ऊर्ध्वा गति बन लाती है, ब्रह्मचर्य से ऊर्ध्वा गति बन जाती है क्योंकि ऊर्ध्वा गति वाला जो ब्रह्मचारी होता है उसकी वाणी में, उसके मस्तिष्क में, उसकी प्रत्येक इन्द्रियों में एक भोलापन आ जाता है और उस भोलेपन में ही उसके ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वागति बन जाती है। भोलापन कैसे आता है उस ब्रह्मचारी के लिए जो एक देव कन्या है, वह माता के तुल्य है। उसका मातृत्व ही आभूषण बन जाता है क्योंकि वह सभी संसार में उस परमात्मा में ही आनन्दमयी जो माता है उसे दृष्टिपात करने लगता है। उसके ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्वा बन जाती है। इसीलिए हे पुत्री ! उसे उद्‌गाता कहा गया है—क्योंकि जब उद्‌गम गाता है तो वह तपाया जाता है। किसके द्वारा तपाया जाता है ? मस्तिष्क को तपाया जाता है।

मेरी बालिका ने कहा कि भगवन मैं यह जानना चाहती हूं यदि मैं गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो जाऊं तो क्या मैं भी अपने बालक को तपा सकती हूं परन्तु यह वाक्य मेरे लिए उत्तर देना सहज नहीं था। तब यह कहा गया हे बालिका ! यह तो जगत् में सभी व्यापार का कार्य प्रायः होता रहता है परन्तु ब्रह्मवेत्ता बनाने के लिए किसी ब्रह्मवेत्ता सुकृत की आवश्यकता होती है जिससे वह तपमय बनाया जा सकता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! क्योंकि यह वाक्य एक बड़ा जटिल था। जटिल होने के नाते उसका उत्तर नहीं बन सका। उन्होंने कहा तो क्या भगवन क्या मैं उद्‌गाता उसी को स्वीकार कर लूं जो संसार में अपने ब्रह्मचर्यव्रत से रहता है। जो उद्‌गान है, वेद में जिसकी निष्ठा होती है, वेद किसे कहा जाता है जिसके हृदय में प्रकाश होता है, आनन्दमय होता है, उसी को उज्जवल बनाया जाता है। बेटा ! मुझे स्मरण है, तुम्हें भी स्मरण होगा कि जब महाराजा अश्वपति के यहां यज्ञ हुआ था या महाराजा कुन्डलीक राजा के यहां यज्ञ हुआ था उसमें देखो, अध्वर्यु और होताजन कैसे ऊंचे ब्रह्मचारी ही कहलाए जाते हैं क्योंकि जिनका ऊर्ध्वागति वाला हृदय हो और परमात्मा की उज्ज्वलता में निष्ठा हो। यह हमारे यहां परम्परा से ही उस महान् प्रभु की महिमा का गुणगान गाना और अपने हृदय को तपाना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। जैसे यजमान का हृदय तपा हुआ होता है इसी प्रकार उसका जो कर्मवाद है यज्ञ का उनका भी हृदय तपा हुआ होना चाहिए। क्योंकि उसी से यह संसार, यह महत्ता ऊंची बना करती है जिसको बेटा हम

दृष्टिपात कर रहे हैं।

उच्चारण करने का अभिप्राय तो अब यह है कि हम यज्ञ के सम्बन्ध में अपना कुछ वाक्य प्रकट कर रहे थे। योग के सम्बन्ध में भी अपना कुछ विचार देते चले जा रहे थे। हमारे यहां परम्परा के आधार पर ऐसा माना गया है कि मानव को तपना चाहिए। अहः! उद्गाता उसे कहा जाता है जो उद्गान गाता है। हृदय से गाता है और ब्रह्म में लीन होकर के गाता है। वह जो गायन होता है वह ब्रह्मवेत्ताओं के लिए महान् लाभप्रद होता है आनन्दमय बनाता चला जाता है। जिसको हमें सदैव विचारना है और महत्ता को लाने में सदैव उज्ज्वलता को प्रकट करना है। बेटा, मैं आज कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है बेटा! जितना यज्ञवेदी में तपा हुआ महान् पुरुष होता है, तपे हुए ब्राह्मण होते हैं, तपा हुआ यज्ञमान होता है उतना ही यज्ञ महत्ता को प्राप्त होता है। बेटा! मानव की वाणी जितनी तपी हुई होती है उतना उस मानव का व्यापार सुन्दर होता है। जितना आहार सुन्दर होता है उतना उसका व्यवहार सुन्दर होता है।

——

आधिदैविक और आधिभौतिक आपत्तियों के निवारण करने के लिए भौतिक यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता था

हमारे यहां नाना प्रकार के यज्ञों का प्रायः वर्णन आता रहता है! आज मैं दैवी यज्ञ के सम्बन्ध में अपना संक्षिप्त परिचय देना चाहता हूं। हमारे यहां परम्परागतों से ही दैवी यज्ञ होता रहा है। परन्तु यज्ञ का अभिप्राय क्या है? उसकी दो प्रकार की रूप रेखा है। एक भौतिक है, दूसरी आध्यात्मिक है। भौतिक जो यज्ञ है उसका वर्णन किए देता हूं। संक्षिप्त परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है। भौतिक यज्ञ में यजमान विराजमान होता है, वह दैवी यज्ञ करने के लिए तत्पर होता है। दैवी यज्ञ का अभिप्राय है दैविक विचारधारा और मानव पर दैविक आपत्ति आती हैं उनको शान्त बना देने के लिए यह यज्ञ किया जाता है! प्रकृति से जितना कष्ट होता है उसे दैविक कहते हैं। प्रभु से याचना की जाती है कि प्रभु यह आपत्ति हमें नहीं चाहिए। हमारे जीवन में यह प्रकृति शान्त भाव से रमण करती रहे। यही 'आवाभ्रवे' यह जो प्रकृति है यह संसार का उपकार आपके द्वार पर होता रहे। हमारे यहां यह यज्ञ का अभिप्रायः है। यह दैवी यज्ञ दैविक जो आपत्तियां आती हैं दैविक अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक, मानव पर आपत्तियां आती हैं ये नहीं आनी चाहिएं। ऐसी कामना के साथ अनुष्ठान किया जाता है। उस अनुष्ठान की बहुत ही ऊंची उड़ान रहती है।

प्राचीनकाल में यज्ञ और यज्ञशालाओं के प्रकार

परन्तु अभिप्रायः यह कि इसको अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान की उड़ान कितनी विचित्र है? उस उड़ान के ऊपर मानव को विचार विनिमय करना चाहिए। मुझे स्मरण है माता अनुसूइया अनुष्ठानपूर्वक यज्ञ करती रहती थीं। यज्ञ का अभिप्राय यह यज्ञ करना। यज्ञ किसे कहते हैं? (दैवी यज्ञ कैसा माना गया है?) हमारे यहां १५ प्रकार के यज्ञ माने गए हैं। ८४ प्रकार की यज्ञशालाएं होती थीं। इनमें लगभग १५ प्रकार की यज्ञशालाएं

मुख्य मानी हैं। एक चतुष्कोण यज्ञशाला होती है। एक त्रिकोण होती है, पंचकोणहोती है। सप्तकोण होती है परन्तु जो दैवी यज्ञ करने वाले होते हैं जो दैवी के कर्मकाण्डको जानते हैं वह सप्त जिह्वा वाली यज्ञशाला का निर्माण करते हैं क्योंकि अग्निकी सप्तजिह्वाएं हैं। सप्त जिह्वाओं के आधार परसप्तम् प्रकार की कोणों वाली यज्ञशाला बनाई जाती है। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक जो परमाणुओं का मिलान करना जानता है वह निर्माणवेत्ता निर्माण करने लगता है और उसी प्रकारका वह निर्माण करता है। विषैली जो वायु है उसका संचार वायु मण्डल में प्रसारित न हो जाए ऐसा विचार रहता है। इसी प्रकार यज्ञशाला का निर्माण होता है।

चैत्र मास में प्रभु के उपासक दैवी यज्ञ किया करते थे

मैं अवैदिकता की चर्चा नहीं करता। हमारे यहां जो वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उसकी चर्चा करता हूं। जब सप्तकोण की निर्माणशाला बनाई जाती है यज्ञशाला, निर्माणशाला को दोनों रूपों से परिणित किया गया है। उसमें 'अप्रतम्' पश्चिम जो भाग है उसमें लगभग तीन जिह्वा आ जाती हैं। उनके आधार पर ही उस आसन पर यजमान विराजमान होता है। पत्नी सहित अनुष्ठान संकल्प करता है। अग्नि के समीप विराजमान हो करके संकल्पवादी बनता है। यज्ञ का अभिप्राय है संकल्प। यज्ञ का अभिप्राय है इस संसार को सुगन्धि देना। जो चैत्रमास होता है, जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरणा दे रहे हैं, इसमें जो दैवी यज्ञ होते हैं, उसमें सप्तकोण की यज्ञशाला का निर्माण होता है और यजमान पत्नी सहित विराजमान होकर यज्ञ करता है। सबसे प्रथम ज्योति को जागरूक करता है। ज्योति को जागरूक करके उस प्रभु से याचना करते हुए वह प्रभु की गोद में जाने का प्रयास करता है। परन्तु प्रभु की उपासना करते हुए महत्ता वाली ज्योति को जागरूक करने वाला जो यजमान है वह दैवी यज्ञ करता है। तो बेटा! अभिप्राय यह कि वह जो सप्तकोण की यज्ञशाला है उसमें जो सुगन्धि उत्पन्न होती है, उसमें जो तरंगें उठती हैं, वह इस पृथ्वी को प्राप्त हो जाती हैं। मानो पार्थिव जो तत्व हैं उन्हीं को वह प्राप्त हो जाती हैं। प्राप्त होने का अभिप्राय यह कि जो नाना प्रकार की वनस्पतियां इस पृथ्वी पर, वसुन्धरा के गर्भ में शुद्ध रूप से परिपक्व हो जाती हैं, उसमें सुगन्धि प्रदान की जाती है।

प्राचीन वैदिक आर्य मुनिजन सहस्त्रों वर्षों तक यज्ञ की अग्नि को अखण्ड रूप से प्रज्वलित रखते थे

मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं उच्चारण कर रहा हूं कि यज्ञशाला में ब्रह्मा को सुन्दर चुना जाता है। उद्गाता होता है। एक अध्वर्यु होता है, और होताजन हों, जिनको ऋत्विज कहते हैं। बेटा! जो यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो रही है। हमारे यहां ऋषि मुनि आचार्य द्वारा राष्ट्र ग्रहों में यह अग्नि सहस्त्रों-सहस्त्रों वर्षों से प्रदीप्त होती रही है। इसका अभिप्राय यह कि अखण्ड ज्योति जो अग्नि है यह कदापि यज्ञशाला से शान्त नहीं होनी चाहिए। वह जो यज्ञवेदी है उस यज्ञवेदी का अभिप्राय यही है कि अखण्ड ज्योति है। अखण्ड अग्नि गौ घृत को ले करके, जो सुगन्धि करता है, अशुद्ध परमाणुओं को नष्ट करता है। वातावरण उसी के द्वारा पवित्र होता है। आज हमें उस यज्ञ के ऊपर प्रायः अनुसंधान करना चाहिए।

पन्द्रह कोण की यज्ञशाला में गो-मेध यज्ञ किया जाता था

यहां वैदिक साहित्य में यज्ञशाला के लिए नाना प्रकार की प्रतिभा आती हैं। जो चतुर्थकोण की यज्ञवेदी है उसमें जो सुगन्धि उत्पन्न होती है वह पार्थिव सूर्य की किरणों को प्राप्त होती है। एक पन्द्रह कोण की यज्ञशाला होती है। उसको हमारे यहां गो-मेध यज्ञ कहा जाता है। उसमें जो सुगन्धित तरंगों की धाराओं का जन्म होता है उनका ध्रुव मण्डल तक प्रायः सम्बन्ध रहता है।

महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज के आश्रम में पांच प्रकार की यज्ञशालाएं थीं

मुझे वह समय भली-भांति स्मरण रहता है। हमारे यहां महर्षि भारद्वाज आश्रम में पांच प्रकार की यज्ञशाला रहती थीं। उनके यहां दैवी यज्ञ को विष्णु यज्ञ कहते थे। विष्णु नाम सूर्य का है। गौ मेघ याग अश्वमेध यज्ञ आदि के लिए नाना प्रकार की यज्ञशाला महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां प्राप्त होती थीं। मुझे स्मरण है महर्षि भारद्वाज के यहां जो पन्द्रह कोण की यज्ञशाला थी, उसमें वे आहुति देते थे। उससे जो तरंगें उत्पन्न होती थीं उसके

साथ में वैज्ञानिक अपनी उड़ान को उड़ना प्रारम्भ कर देते थे। मेरे प्यारे ऋषिवर, जिस प्रकार योगीजन सूर्य की किरणों के आश्रित हो जाता है, किरणों को लेकर के वह अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ने लगता है। इसी प्रकार हमारे यहां दैवी यज्ञ के सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा गया है। ये जो भौतिक यज्ञ हैं, जैसा महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां नाना प्रकार की यज्ञशालाएं रहती थीं और उन यज्ञशालाओं में आहुति देते, तरंगें उत्पन्न होतीं, सुगन्धि आती तो बेटा उसके ऊपर अनुसंधान चलता। उन परमाणुओं को एकत्रित किया जाता वे ही परमाणु इस वायु मण्डल को ऊंचा बनाते हैं। प्रकृति को ऊंचा बनाते हैं। क्योंकि प्रकृति को दैवी कहा है। वेदों ने इसको दैवी कहा है, धेनु कहा है, रेणुका कहा है, काली मां कहा है, दुर्गेवेत्ती कहा है, सोम-धाम-केतु कहा है। इसी को वैष्णवी कहा है। परन्तु इसकी नाना प्रकार की रूप रेखायें और नाना प्रकार के भेदन हैं।

भिन्न-भिन्न यज्ञों के भिन्न-भिन्न देवता (मूल विषय) माने जाते थे

आज मैं उन भेदनों में नहीं जाना चाहता हूं। विचार केवल यह है कि एक प्रकार का यन्त्र बनाया जाता था। उसे सुगन्धि यन्त्र कहते हैं। उसको यज्ञ कुण्ड भी कहा जाता है। यज्ञ कुण्ड का अभिप्रायः यह कि जिसमें घृत की आहुति प्रदान की जाती है। ऋषि मुनियों ने ऐसी यज्ञशालाओं का निर्माण क्यों प्रारम्भ किया? हमारे यहां त्रिकोण वाली भी होती हैं और षटकोण की भी होती हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार के देवता होते हैं। प्रत्येक यज्ञ का प्रत्येक देवता होता है। जैसे दैवी यज्ञ का देवता गायत्री है। गायत्री जिसे हम इन्द्र कहते हैं। इसी प्रकार विष्णु यज्ञ का देवता शिवोप्राप्त कहा जाता है। और ब्रह्म यज्ञ है ब्रह्म यज्ञ का जो देवता है वह देवता 'आभा गन्धर्व' माना गया है। आज मैं बेटा इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देने नहीं आया हूं। अभिप्रायः यह कि आज हमें इन यज्ञों को विचारना चाहिए। जहां बेटा सुगन्धि दी जाती हो, दुर्गन्ध का विनाश किया जाता हो, यह है बेटा भौतिक यज्ञशाला की रूप रेखा।

भौतिक यज्ञों के साथ आध्यात्मिक यज्ञ की स्थापना तथा अनुष्ठान

अब इसका आध्यात्मिक रूप तुम्हें श्रवण कराए देता हूं। हमारे यहां

महर्षि भारद्वाज ही नहीं, इससे पूर्व काल में भी सतयुग के काल में एक मुनि-वरो ! महर्षि मानकेतु हुए थे। राजा मानदाता के यहां वे राजपुरोहित होते थे। उनके यहां नित्य यज्ञ होता था। यज्ञ के ऊपर उनका विचार-विनिमय होता रहता था। आध्यात्मिक रूप-रेखा निर्माण करते थे। उन्होंने कहा कि हमें आत्मा का ज्ञान करना चाहिए। हमें नाना प्रकार की प्रवृतियों का यज्ञ करना है। हमारे इस मानव शरीर में पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियां, दस प्राण और मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार हैं। इनसे नाना प्रकार के विषयों को मानव एकत्रित करता है इनकी धाराएं हैं, इनमें विषय हैं। और इन विषयों को जो एकत्रित करता है, उसका साकल्य बना करके उस हृदय रूपी यज्ञशाला में जो आहुति देना चाहता है बेटा, वह आध्यात्मिक यज्ञ कर रहा है। उसको हमारे यहां दैवी यज्ञ कहा जाता है। तो बेटा ! यह सर्वोपरि याग है। वह आत्मिक यज्ञ कहलाया गया है। इसके ऊपर मानव को प्रायः विचार विनिमय करना है, विचारशील रहना है। जिसकी विचारधारा को लेकर मानव सदैव संसार में एक महत्ता की ज्योति को प्राप्त हो जाता है।

आध्यात्मिक यज्ञ के द्वारा आत्म चेतना को जागरूक करके आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप को जानना

मेरे प्यारे ऋषिवर ! मैं अधिक विवेचना तो प्रकट नहीं करूंगा। आज का हमारा विचार केवल यह है कि आज हमें यज्ञ करना चाहिए, उस यज्ञ के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए। जिस यज्ञ के द्वारा मानव इस प्रकृति और वातावरण को सुन्दर बनाता है। मुनिवरो ! यह जो आध्यात्मिक यज्ञ है यह कैसे किया जाता है ? यह प्रश्न प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। आध्यात्मिक यज्ञ का अभिप्राय है। आत्म चेतना को जानना, उसे जागरूक करना। मुनिवरो ! हमारे ऋषि मुनियों ने दो प्रकार के हृदय माने हैं। एक ब्रह्मरन्ध्र को भी हृदय माना है। दूसरा रसना और कण्ठ के और नाभि के दोनों के मध्य में है। इस मध्य भाग को भी हृदय कहा जाता है। इन दोनों हृदयों का समन्वय होना चाहिए अब दोनों हृदयों का समन्वय किस प्रकार किया जाता है ? मुनिवरो वह समन्यव करते इस प्रकार ध्यानावस्थित हो जाओ कि वह जो ओम् रूपी धागा है उस धागे में प्रत्येक इन्द्रियों का विषय पिरोया हुआ होना चाहिए। जब इन्द्रियों का विषय प्रत्येक धागे में पिरोया हुआ होता है वह एक माला बन जाती है, साकल्य बन जाता है, हृदय रूपी

यज्ञशाला में उसकी आहुति दी जाती है। आहुति का अभिप्राय यह कि मन और प्राण ही जगत में, इस प्रकृति के गर्भ में अपना कार्य कर रहे हैं। जहां भी दृष्टिपात करो वहीं प्राण और मन ही हैं। उस मानवीय शरीर में क्या आज हम पृथ्वी के इस माता वसुन्धरा के, दैवी के गर्भ में जाते हैं। जितना भी खाद्य है, खनिज है जितना भी इसमें रस का संचार होता है, विभाजनवाद है, वह सर्वत्र विभाजनवाद विश्वभान मन के द्वारा होता है। और वह मन इस प्रकृति के, दैवी के गर्भ में परिणत होता हुआ खनिज और खाद्य को उत्पन्न करता है। मुनिवरो! वह जो नाना प्रकार का खनिज है जिसके द्वारा राष्ट्र की उन्नति होती है। विशाल से विशाल वैज्ञानिक मुनिवरो! इस महान् दैवी पर अनुसन्धान करना प्रारम्भ कर देते हैं।

——

तृतीय खण्ड

यज्ञ वेदी क्या पुकारती है

'अजय-मेध-यज्ञ' अथवा 'अजा-मेध-यज्ञ'

मुनिवरो देखो ! आज हमारे वेद पाठ में कई स्थानों पर तेजस्वी ब्राह्मण का वर्णन आ रहा था। वह तेजस्वी ब्राह्मण सबका कल्याण करने वाला होता है, प्रजा को उच्च बनाने वाला होता है, प्रजा में अज्ञान को छाने नहीं देता। जिस काल में ऐसे ब्राह्मणों की संख्या अधिक होती है, उस काल में अज्ञान आता ही नहीं है। मुनिवरो देखो ! ऐसे महान ब्राह्मण राजाओं को समय पर चेतावनी देने वाले हों। अजय-यज्ञ-मेघ को कराने वाले हों।

बेटा ! 'अजय-मेध-यज्ञ' किसको कहते हैं ? अजय शब्द के माता, पृथ्वी, यज्ञ, राष्ट्र और प्रजा अर्थ होते हैं। मेध' शब्द के यज्ञ और राजा अर्थ होते हैं। 'अजा' शब्द के बकरी तथा वेदी अर्थ होते हैं। ब्राह्मणजन बेदी को सजाया करते हैं। यज्ञ को पूर्ण समारोह के साथ करते हैं। राजा अपनी धर्मपत्नी के साथ राष्ट्र के उत्थान करने में सदा लगा रहे। राष्ट्र के उत्थान के लिए राजा अपनी धर्मपत्नी के साथ 'अजय मेध' करता रहे। यह उसका परम कर्त्तव्य है।

अजा नाम पृथ्वी का भी है। जिस काल में वैज्ञानिकजन एकांत स्थान में विराजमान होकर पृथ्वी के तत्वों को विचारते हैं, नाना प्रकार के अनु-सन्धान करके उस भौतिक विज्ञान को पाते हैं तब उसको 'अजा-मेध-यज्ञ' कहते हैं।

मुनिवरो ! 'गो-मेध-यज्ञ' भी होता है। 'गो' नाम से पृथ्वी और इन्द्रियां दोनों को लिया जाता है। इन्द्रियों के द्वारा विषयों का तथा पदार्थों के गुणों का ज्ञान होता है। पृथ्वी का मुख्य गुण गन्ध है। आज गन्ध को जानना है। गन्ध कहां से आती है ? किस स्थान से प्रकट होती है ? कौन-कौन से तत्वों से मिलकर बनती है ? इसका जानना ही 'गो-मेध-यज्ञ' कहलाता है।

आज हमारे वेद पाठ में 'अजय-मेध-यज्ञ' का वर्णन आ रहा था। आज हमें अजय-मेध-यज्ञ करने का संकेत मिला। 'अजय' के नाना अर्थ हैं। इसलिए आज हमें विचार कर निश्चय करना चाहिए कि प्रसंग के अनुसार जिस शब्द के जिस अर्थ की आवश्यकता हो उसी का ग्रहण आवश्यक है। उसी का प्रयोग अनिवार्य है ? अन्य का अर्थ नहीं। उसी से मानव का विकास होगा। उसी से मानव का आत्मा उच्च बनेगा अन्यथा नहीं।

बेटा ! अभी-अभी प्रसंग चल रहा था कि राजाओं का क्या उद्देश्य है ? राजाओ को कैसा यज्ञ करना चाहिए ? अर्थात् उनको 'अजय-मेध-यज्ञ' अथवा अजा-मेध-यज्ञ' करना चाहिए ? देखो, बेटा ! अजा नाम प्रजा का है। मेध नाम राजा का है। दोनों का सम्बन्ध करके यज्ञ किया जाए, उसी यज्ञ को यहां 'अजा-मेध-यज्ञ' कहा जाता है। बेटा ! महाराजा राम ने त्रेता काल में अजय-मेघ-यज्ञ किया था। राजा रावण ने उस यज्ञ का ब्रह्मा बन करके यज्ञ को पूर्ण किया।

बेटा ! मेध नाम आत्मा का भी है। अजा नाम इसकी प्रजा का है। आत्मा सम्बन्धी आत्मा का परिवार है। अन्तःकरण, चित्त, बुद्धि और अहं-कार यह सब आत्म का परिवार है। ये ज्ञानेन्दियां और कर्मेन्द्रियां भी आत्मा के ही परिवार हैं। इस महान परिवार को कौन चलाने वाला है ! जब हम आत्मा और उसके परिवार को भली प्रकार से जान जाते हैं तब हम स्वतः ही उस महान राजा को जान लेते हैं। उस मेध को जान लेते हैं। तब हम आत्मा तत्व के जानकार बन जाते हैं। इसी प्रकार जो राजा अजा-मेध-यज्ञ करने वाले होते हैं। ये प्रजा के भावों को जान लेते हैं। साथ में राष्ट्र के ब्राह्मणों की परीक्षा भी हो जाती है कि मेरे राष्ट्र में कैसे-कैसे बुद्धिमान ब्राह्मण हैं ?

मुनिवरो ! इस समय सतयुग के काल की एक वार्ता हमारे कण्ठ (स्मरण) आ गई है। मुनिवरो ! सतयुग में अटुल मुनि महाराज महीयस राजा के पुरोहित थे। एक समय राजा अपने राज-स्थान में विराजमान थे। न्यायालय में प्रजा न्याय कर रहे थे। उस समय उनके हृदय में विचार आया कि हमें 'अजय-मेध-यज्ञ' (अजा-मेध-यज्ञ) करना चाहिए।

अजा-मेध-यज्ञ किसके लिए करना चाहिए ? प्रजा के लिए करना चाहिए। जिससे हमारी प्रजा महान बने। प्रजा में सदाचार हो। प्रजा में ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि हो। राष्ट्र में वेदों का प्रसार हो, प्रत्येक गृह में यज्ञ हों। यजन से हमारे राष्ट्र का वातावरण सुगन्धि दायक बनेगा।

बेटा ! राजा के मन में इस विचार के आने के पश्चात् राजा ने अपने मन में संकल्प-विकल्पों द्वारा वड़ा अनुसन्धान किया। इस विचार को लेकर राजा अपने गुरु पुरोहित के समक्ष आ पहुंचे। अटुल-मुनि महाराज ने राजा का बड़ा स्वागत करके कहा, प्रिय ! आनन्द हो ?

राजा ने उत्तर में कहा, विशेष आनन्द है।

अच्छा, धन्यवाद। कैसे आगमन हुआ ?

उन्होंने कहा, भगवन ! हम इसलिए आए हैं कि इस काल में हमारी एक अजय-मेध-यज्ञ (अजा-मेध-यज्ञ) करने की इच्छा है। जिससे हमारी प्रज्ञा का श्रेष्ठ बने। हमारी प्रजा में महत्ता आए।

अजय-मेध-यज्ञ' या 'अजा-मेध-यज्ञ' का कौन अधिकारी

मुनिवरो ! राजा की इन वार्ताओं को सुनकर अटुल मुनि महाराज ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हारी इस वार्ता को सुनकर तथा निष्ठा एवं योग्यता को देखकर हमें निश्चय हो गया कि तुम 'अजा-मेध-यज्ञ' करने में अवश्य सफल हो जाओगे। परन्तु वेद विद्या कहती है और परम्परा भी यही बतलाती है कि अजय-मेध-यज्ञ (अजा-मेध-यज्ञ) करने का उसी राजा को अधिकार है जिसकी प्रजा में एक-दूसरे का कोई भी ऋणी न हो। हमको पता नहीं है कि तुम्हारी प्रजा में क्या सभी ऋण-मुक्त हैं ? पहले आप इसका अनुसन्धान कीजिए।

राजा ने गुरुदेव की आज्ञा पा करके कहा कि मैं राज्य में भ्रमण करके देखूंगा कि मेरी प्रजा में एक-दूसरे का ऋणी तो नहीं है। बेटा ! राजा वहां से चलकर अपने राष्ट्र में पहुंचे। विचार करते प्रजा में भ्रमण करके देखा कि प्रत्येक गृह में नित्य प्रातःकाल यज्ञ हो रहा है। राष्ट्र में एक-दूसरे का कोई ऋणी नहीं था। प्रजा सब कुशल से है। प्रजा में बड़ा आनन्द छा रहा है।

पिता की सेवा करने वाले पुत्र हैं। उनको योग्य बनाने के लिए माता-पिता भी कुशल हैं। राजा ने देखा कि उसके द्वारा बनाए गए नियम राष्ट्र में बड़े आनन्द से चल रहे हैं। क्षत्रिय राष्ट्र की रक्षा कर रहे हैं।

राजा अपने राष्ट्र की ऐसी स्थिति और कुशलता को देखकर बड़ी प्रसन्नता के साथ चलकर राज पुरोहित गुरु के समक्ष जा पहुंचे। गुरु से कहा कि भगवन ! मेरे राज्य में तो बहुत कुशल हैं। मेरे राष्ट्र में कोई किसी का ऋणी नहीं है। मेरा राष्ट्र सब प्रकार से महान है।

यज्ञ में धर्मपत्नी का महत्व

उस समय राजा की इस वार्ताओं को पाकर ऋषिवर बड़े प्रसन्न होकर बोले कि भाई ! अजय-मेध-यज्ञ (अजय-मेघ-यज्ञ) करो। परन्तु यज्ञ करने से पूर्व तुम अपनी धर्मपत्नी से अनुमति लेकर आओ। वह तुम्हें अनुमति दे तो अवश्य यज्ञ करो। अन्यथा तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

उस समय बेटा ! राजा वहां से चलकर राजगृह में जा पहुंचे। राजा के पहुंचते ही पत्नी ने चरणों को स्पर्श किया। नमस्कार करके राजा का बड़ा स्वागत किया। आसन पर विराजमान करके धर्मपत्नी ने कहा, कहिए भगवन ! आपका मन कैसे भ्रमित हो रहा है ? इसका क्या कारण है ? आज हमको प्रतीत हो रहा है कि आपको किसी प्रकार का शोक है या किसी प्रकार की विशेष अशान्ति है।

उस समय राजा ने कहा कि हे धर्मपत्नी ! मेरे मन में कोई शोक नहीं है। मेरा मन इसलिए भ्रमित है कि मैं अजय मेध यज्ञ करने जा रहा हूं। राजगुरु पुरोहित ने कहा है कि तुम अपनी धर्मपत्नी की अनुमति लेकर यज्ञ करो तो तुम्हारी क्या इच्छा है ?

उस समय धर्मपत्नी बड़ी मग्न हो गई। उसके हृदय के कपाट खुल गए। हृदय में ज्योति जगने लगी। धर्मपत्नी ने कहा, भगवन ! मेरे अहोभाग्य आप यजमान बनकर अजय-मेध-यज्ञ (अजा-मेध-यज्ञ) रचावें, देवताओं को हम कुछ देवें जिससे हमारे राष्ट्र का उत्थान होवे। यह तो भगवन ! बहुत सुन्दर विचार है।

मुनिवरो ! देखो, धर्मपत्नी से अनुमति लेकर राजा ने वहां से चलकर ऋषिवर के समक्ष जाकर कहा, भगवन ! मेरी धर्मपत्नी बड़ी ही प्रसन्न है। उसका वाक्य है कि हमारे ऐसे सौभाग्य कहां ? उसका हृदय मुग्ध होने लगा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके हृदय में धर्म की अग्नि प्रज्वलित हो रही हो।

यज्ञ-वेदी की सजावट क्यों ?

बेटा ! उस समय ऋषिवर ने इन वाक्यों को पाकर के नाना ब्राह्मणों को निमन्त्रण देकर वहां एक विशाल यज्ञ रचाया। वहां बड़ी सुन्दर यज्ञशाला रचाई गई। यज्ञशाला के रचने से वहां अक्षय आनन्द छा गया। नाना प्रकार की चित्रकारियों से वह यज्ञशाला रचाई गई। सब देवताओं के स्थान बनाए गए। वेदी वही होती है जिसे बेटा ! ब्राह्मण बुद्धिमत्ता के साथ वेद अनुकूल रचाता है। उस समय महर्षि जी से राजा ने प्रश्न किया कि भगवन ! यह यज्ञशाला क्यों रचाई जाती है, इसका क्या कारण है कि इतनी चित्रकारी की जाती है ? बेटा ! तब ऋषि ने उत्तर दिया कि देखो, जैसे परमात्मा ने इस संसार रूपी यज्ञ को उत्पन्न किया है। उसको इतनी चित्रकारियों से सजाया है ऐसे ही हम छोटे से वैज्ञानिक हैं, परमात्मा के बालक हैं। परमात्मा जैसे यज्ञ तो नहीं रचा सकते, उसके बालक जैसा यज्ञ रचा सकते हैं। हम तो उनका सूक्ष्म-सा रूप ले रहे हैं कि जो चित्रकारियों से इस यज्ञशाला को रचाया है। मुनिवरो ! देखो, ऋषिवर ने जब यह उत्तर दिया तो राजा बड़े मग्न हो गए। मग्न होकर कहा धन्यवाद। उसके बाद वहां नाना प्रकार की सामग्री एकत्रित हो गई। सब शाकल्य एकत्रित हो गया। प्रजा को निमंत्रण दिया गया। यजमान, यजमान की धर्मपत्नी वहां यज्ञशाला में विराजमान हो गए। वहां शुनि मुनि महाराज, पापड़ी मुनि महाराज, दोनों उस यज्ञ के उद्‌गाता बने। अटल मुनि महाराज, उस यज्ञ के उध्वर्यु बने। तत्व मुनि महाराज उस यज्ञ के ब्रह्मा बने। इसके अनन्तर यज्ञ आरम्भ हो गया। बेटा ! ब्रह्मा के ऊपर यज्ञ का भार होता है। ब्रह्मा ने विधिपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करा कर समुद्र की क्रिया आरम्भ की। जब वहां समुद्र की क्रिया हो रही थी, उस समय पापड़ी ऋषि महाराज आ पहुंचे।

अधिकारी से ही यज्ञ कराने का विधान

बेटा ! उस काल में वहां शोलक ऋषि आदि ऋषियों का एक दार्शनिक समाज विराजमान था। दार्शनिक समाज में पापड़ी ऋषि को नियुक्त किया गया कि जाओ परीक्षा करो कि वे कैसे बुद्धिमान हैं ? राजा अजय-मेघ-यज्ञ (अजा-मेघ-यज्ञ) के अधिकारी हैं या नहीं ? यदि नहीं हैं तो यज्ञ में कहना चाहिए कि तुम अजय-मेघ-यज्ञ के अधिकारी नहीं हो। तो उस समय महर्षि पापड़ी मुनि जी उस दार्शनिक समाज से वहां जा पहुंचे।

यज्ञ के समस्त कर्मकाण्ड का महत्व : यज्ञ में जल सिंचन क्यों ?

जिस समय तत्व मुनिजी उस यज्ञ के ब्रह्मा जल सिंचन करा रहे थे उस समय पापड़ी ऋषि ने प्रश्न किया कि महाराज ! यह जल सिंचन क्यों हो रहा है, यह क्या क्रिया है और क्या पदार्थ है ?

उस समय ऋषिवर ने उत्तर देते हुए कहा कि यह महान् समुद्र है जैसे परमात्मा ने इस महान् संसार को उत्पन्न किया है। उसके मध्य में पृथ्वी बनी हुई है । ऐसे ही यह वेदी नाम की पृथ्वी है । इसके आस-पास ही यह समुद्र बना हुआ है। उस परमात्मा द्वारा उत्पन्न आकर्षण शक्ति, उसकी महान् विद्युत के आधार पर यह पृथ्वी स्थित है।

आज हम यजमान देवताओं का शाकल्य बनाने के लिए उन समुद्रों के विश्लेषणात्मक दृष्टि से उनके स्वरूप को समझकर उसके गुणों से लाभ उठाते हुए वेद के अनुकूल इस वेदी का कर्मकाण्ड कर रहे हैं। मुनिवरो ! तब ऋषि जी बड़े आनन्द के साथ विराजमान हो गए। यज्ञ आरम्भ होने लगा। महर्षि पापड़ी ने सोचा कि ब्रह्मा तो वास्तव में योग्य है ? आपका क्या कर्तव्य है ?

यज्ञ में ब्रह्मा का कर्त्तव्य—मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण का प्रयोजन

उस समय ब्रह्मा ने कहा कि मेरा कर्तव्य है कि मैं यह देखूं कि यज्ञ का कोई उद्गाता वेद मन्त्र तो अशुद्ध उच्चारण नहीं कर रहा। यदि यज्ञशाला में वेद मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण हो गया तो बड़ा पाप होगा। वह पाप क्यों हो जायेगा क्योंकि जिस वेद वाणी के द्वारा हम जिन देवताओं का आह्वान

करके उनका स्वागत कर रहे हैं, यदि वही वेदवाणी अशुद्ध होगी तो देवता हमारे समक्ष क्यों आयेंगे। जैसे लोक में जब बुद्धिमान व्यक्ति हमारे समक्ष आते हैं और हम बुद्धिपूर्वक उनका स्वागत नहीं करते हैं। हम मूढ़ बुद्धि से स्वागत करते हैं तो वे बुद्धिमान हमारे समक्ष आना त्याग देते हैं। ऐसे ही वेद मन्त्रों के यज्ञवेदी पर अशुद्ध उच्चारण से देवता हमारी उपेक्षा कर देंगे। तब यह सब कर्मकाण्ड निष्फल हो जायेगा। इसी प्रकार मुनिवरो! वेदमन्त्रों के यज्ञ में यज्ञ वेदी पर शुद्ध उच्चारण का अभिप्राय है। जिन देवताओं को शाकल्य देना है हम उन्हीं देवताओं का शुद्ध मन्त्रपाठ के द्वारा आव्हान कर रहे हैं, उन्हीं से याचना कर रहे हैं। यदि मन्त्रोच्चारण अशुद्ध हुआ तो देवता हव्य पदार्थों को कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। परिणाम यह होगा कि वे हमारे संसार का कदापि कल्याण नहीं करेंगे।

मुनिवरो! महर्षि पापड़ी जी इन वार्ताओं को पाकर बड़े मग्न हो गए। उन्होंने आनन्द में मग्न होकर कहा कि अहोभाग्य है कि जहां ऐसे ब्रह्मा हों तथा जहां इतनी विद्वत्ता के साथ वेदों के मन्त्रों का उच्चारण शुद्ध होता है।

यज्ञ में उद्‌गाताओं का कर्त्तव्य

मुनिवरो! इसके पश्चात् पापड़ी ऋषि उद्‌गाताओं के समीप पहुंच कर बोले, हे उद्‌गाताओं! तुम जो वेदों का पाठ कर रहे हो इसका क्या अभिप्राय है, यह क्यों कर रहे हो?

उद्‌गाताओं ने उत्तर दिया कि भगवन! यह हमारा कर्तव्य है कि वेदों के मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण पूर्वक पाठ करके वेद की विद्याओं का प्रसार करें। हमारी आत्मा का उत्थान हो और हम देवताओं में रमण करें। वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के साथ यजन करते हुए शाकल्य तथा हव्य-पदार्थों को देवताओं के समक्ष प्रस्तुत करके देवताओं से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे देवताओं। आइए, हमारे शाकल्यों को, इन हव्य पदार्थों को ग्रहण करो। भगवन! हमारे लिए प्रत्येक प्रकार से कल्याणकारी बनो।

मुनिवरो! देखो, तब ऋषिवर ने सोचा कि भाई! ये उद्‌गाता भी बड़े बुद्धिमान हैं।

यज्ञ में अध्वर्यु का कर्त्तव्य

इसके पश्चात् पापड़ी ऋषि महाराज अध्वर्यु (महर्षि अटुल मुनि महाराज) के समक्ष पहुंचकर बोले कि हे भगवन ! आप नाना प्रकार की सामग्री एकत्रित करके यजन करते हुए देवताओं को शाकल्य दे रहे हैं, वह क्यों दे रहे हैं, इसका क्या अभिप्राय है ?

यज्ञ में सामग्री की शुद्धता का महत्व

उन्होंने उत्तर दिया कि यह मेरा कर्तव्य है कि मैं शुद्ध रूप से देवताओं को शुद्ध सामग्री दूं जिससे कि देवताओं का आहार शुद्ध हो। यदि देवताओं का आहार शुद्ध होगा तो हमें देवताओं से श्रेष्ठ प्राण-सत्ता मिलेगी। आज हमें वह महत्ता प्राप्त करनी चाहिए कि जिससे हमारा जीवन, राष्ट्र का जीवन, संसार के मानव का जीवन उच्च बने और विद्या का प्रसार हो। वेदों के अनुकूल बनी सामग्री की आहुतियां देने से देवता उसको स्वीकार करते हैं।

यज्ञ में यजमान द्वारा दी गई आहुतियों का महत्व तथा यजमान की भावनाओं का स्वरूप

मुनिवरो ! इन वार्ताओं को पाकर ऋषिवर यजमान के समक्ष जा पहुंचे और बोले कि हे यजमान ! तुम जो ये आहुतियां दे रहे हो इनका क्या अभिप्राय है ?

राजा ने कहा हे ऋषिवर ! हम आहुति देने के साथ-साथ प्रार्थना कर रहे हैं कि हे प्रभु ! आपने हमारे राष्ट्र को तथा इस सारे संसार को उत्पन्न किया है। हे विधाता ! हे देवताओं ! हमारे राष्ट्र में शुद्ध ज्ञान प्रकाश हो, सद्भावनाओं वाले व्यक्ति हों, जिससे हमारे राष्ट्र में घृत-दाता पशुओं की हानि न हो। हे भगवन ! यदि हमारे राष्ट्र में गौओं की हानि हो जाएगी तो मेरा राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट हो जाएगा ! हे विधाता। हे देवताओं ! मैं यह सद्भावना पूर्वक आहुति दे रहा हूं कि हमारे राष्ट्र में पशुओं की वृद्धि हो तथा मेरा राष्ट्र प्रत्येक प्रकार से विशाल हो।

यजमान की धर्मपत्नी का कर्तव्य एवं भावनाएं

मुनिवरो ! यजमान से इस प्रकार वार्ता सुनकर ऋषिवर ने यजमान की धर्मपत्नी के समक्ष पहुंचकर कहा कि हे धर्म देवी ! तुम्हारी आहुति देने का क्या मन्तव्य है ? उस समय धर्मदेवी ने कहा कि ऋषिवर ! आप तो बड़े बुद्धिमान हैं, आप ऐसे वाक्य क्यों उच्चारण कर रहे हैं जो कि आपके योग्य नहीं हैं। तब ऋषिवर ने कहा कि आप भी अपना कुछ विचार तो उच्चारण कीजिए। उस समय धर्मदेवी ने कहा कि हे विधाता ! मैं मन के इस संकल्प के साथ आहुति देती हुई याचना कर रही हूं कि "हे देव ! परमात्मन् ! हम शुभ कार्य करते रहें। मेरे स्वामी के राष्ट्र में शुभ कार्य होते रहें, अशुभ कार्य न हों। मेरे स्वामी के राष्ट्र में कोई भी मानव, कोई भी देवकन्या दुराचारी न हो। हे भगवन ! हे ऋषिवर ! जिसके राष्ट्र में देवकन्याएं वा पुरुष दुराचारी हो जाते हैं उस राजा का राज्य आज नहीं तो कल अवश्य समाप्त हो जाएगा। हे भगवन ! मेरी यह प्रार्थना है कि प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक मानव उच्च विचार वाला महान सदाचारी हो जिससे मेरे स्वामी का राष्ट्र एक विशाल राष्ट्र बने और ऐसे धर्म के कार्य प्रत्येक स्थानों में होते रहें जिससे राष्ट्र में बुद्धिमानों का प्रसार हो। वेद प्रचार के बिना राष्ट्र के मानवों में कभी सात्विक बुद्धि नहीं आती है।

मुनिवरो ! जब ऋषिवर ने इन वाक्यों को पाया तो ऋषि चकित हो हो गए। ऋषि जी ने कहा कि ये तो वास्तव में 'अजय-मेघ-यज्ञ' (अजा-मेघ-यज्ञ) करने के अधिकारी हैं।

यज्ञ में ऋत्विजों का कर्तव्य

इसके पश्चात् ऋषि आहुतियां देते हुए ऋत्विजों के समक्ष पहुंचे। ऋषि ने ऋत्विजों से प्रार्थना की कि भगवन ! आप लोग जो ये आहुतियां दे रहे हैं, इसका क्का अभिप्राय है ?

उस समय ऋषिवर के वाक्यों को पा करके ऋत्विजों ने कहा कि भगवन ! हम याचना कर रहे हैं कि हे विधाता ! हमारे में जो दुर्गुण एवं दुर्गन्धियां हैं उनको समाप्त करके हमारे में सुगन्धि प्रविष्ट करें। जब हमारा जीवन सुगन्धिदायक बनेगा, तब हमारा जीवन महान् बनेगा। हम राष्ट्र के

तथा संसार के हितैषी बनेंगे। हे विधाता! हम हर प्रकार से हितैषी बनकर संसार को सुख पहुंचा कर देवताओं के समक्ष पहुंचें।

मुनिवरो! ऋषिवर इन वाक्यों को पाकर शान्त हो गए।

यज्ञमें समिधाओं एवं सामग्री के महत्व का आलंकारिक रूप में वर्णन

मुनिवरो! यह तो यथार्थ में यज्ञ का वर्णन था। आगे आलंकारिक वर्णन आता है।

यज्ञ में समिधाओं की महत्ता

मुनिवरो! ऋषि जी महती समिधाओं के समक्ष पहुंचे और समिधाओं से कहा कि हे समिधाओं! यह क्या हो रहा है? तुम अग्नि में प्रविष्ट हो रही हो और अग्नि तुम्हें नष्ट कर रही है। तुम अग्नि का आहार बन रही हो। इससे तुम्हारा क्या मन्तव्य है?

बेटा! देखो, उस समय समिधाओं ने कहा कि हे विधाता! संसार में वही मानव सुख पाता है जो किसी का बन जाता है। देखो, ऋषि जब ही बनता है जब गुरु की शरण में चला जाता है। गुरु उसके दुर्गुणों को नष्ट कर देते हैं। अग्नि-विद्या को धारण करा देते हैं। तभी वह ऋषि बनता है। इसी प्रकार विधाता! हम अग्नि रूप गुरु के समक्ष जाकर अपने पार्थिव परमाणुओं को समाप्त करके अपने सूक्ष्म रूप धारण करके सूर्य-मण्डल तक पहुंच कर देवताओं की शरण में चली जाती हैं। महान आदित्य हमको धारण करके आहार करके, धीमी-धीमी किरणों के द्वारा समुद्रों में पहुंचा देते हैं। समुद्रों से मेघ के रूप को धारण करके वृष्टि द्वारा पृथ्वी पर आ जाती हैं। पृथ्वी पर स्थावर सृष्टि के रूप में उत्पन्न होकर हम संसार का कल्याण करती हैं।

यज्ञ में सामग्री की महत्ता

मुनिवरो! ऋषि जी उनके युक्ति-युक्त उत्तर से सन्तुष्ट होकर सामग्री के समक्ष पहुंचे। उन्होंने सामग्री से प्रश्न किया कि तुम यह क्या कर रही हो? तुम अग्नि के समक्ष जाकर उसमें क्यों भस्म हो रहो हो? इससे तुम्हारा क्या अभिप्राय है। तुम्हें इसमें क्या लाभ प्रतीत होता है?

सामग्री का वैज्ञानिक लाभ

उस समय उस महती सामग्री ने कहा था कि हे विधाता ! नाना प्रकार की वस्तुओं को एकत्रित करके हमको बनाया गया है । इसके अनन्तर हमको अग्नि के अर्पण कर दिया जाता है । अग्नि हमको भस्म कर देती है । हमारा सूक्ष्म रूप बनकर अन्तरिक्ष में आदित्य में पहुंच जाता है । जब हम आदित्य में रमण करती हैं, तब आदित्य हमें बल देता है । उस बल से किरणें उत्पन्न होती हैं जो समुद्रों में जाती हैं । समुद्रों से जल का उत्थान होता है, जल से मेघ बन जाते हैं । मेघों में वृष्टि होती है । वृष्टि से पृथ्वी पर नाना प्रकार की समिधाएं तथा नाना प्रकार की सामग्रियां उत्पन्न हो जाती हैं ।

ज्ञानाग्नि में स्नान करने पर जीव के जीवन की सफलता

संसार में उसी का जीवन उच्च है जो किसी का हो जाता है । जो किसी का नहीं होता वह संसार में अधूरा बना बैठा रहता है । देखो, जब तक ज्ञान रूपी अग्नि में आत्मा में स्नान नहीं किया, अपने दोषों को भस्म नहीं किया, तब तक आत्मा परमात्मा से विमुख ही रहता है । भगवन ! इसी कार जब तक हम अपने रूप को अग्नि में भस्म न कर देंगे, तब तक हमारा यार्थ रूप देवताओं के समक्ष नहीं आयेगा, तथा तब तक हम संसार का ोई उपकार न कर सकेंगे । यदि हम उपकार न कर सके तो हमारा जीवन निष्फल है ।

मुनिवरो यह है हमारा आज का आदेश जो हो रहा था । यह कैसा सुन्दर वाक्य आज हमारे वेद पाठ में आया । इस पर सतयुग की कैसी सुन्दर वार्ता हमारे कण्ठ में आ गई ।

——

यज्ञ का स्वरूप

(दिनांक : १६-७-६६ को पंजाबी बाग, दिल्ली में दिया गया प्रवचन)

देखो मुनिवरो ! आज हम पुनः की भाँति कुछ वेद मन्त्रों का पाठ कर रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज जिन वेद मन्त्रों का पुनः से गान गाते चले जा रहे थे, जिनमें परमपिता परमात्मा की अमूल्य निधि का वर्णन करते चले जा रहे थे। जितना यह ब्रह्मांड परमात्मा ने रचाया है यह एक प्रकार का यज्ञ क्षेत्र है। जिस सुन्दर यज्ञ वेदी पर विराजमान होते हुए प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या अपने कर्म को विलक्षण बनाता चला जा रहा है। मेरे पवित्र भगवन ! हे देव ! आज तू उस यज्ञ कर्म को महान् बना। हे विधाता ! जिस सुन्दर यज्ञ में आपकी महान् अनुपम कृपा के द्वारा हो हमारा जीवन पनपता है, जिस दया के द्वारा हमारे जीवन का संचालन होता है। आज हम अपने जीवन का संचार चाहते हैं। हे पवित्र बनाने वाले देव! हमारे नमस्कार को स्वीकार करो जिससे विधाता ! उज्ज्वल यज्ञ कर्मों में हमारे जीवन की जो संलग्नता है वह ऊंची और विलक्षण बनती चली जाए। हे परमात्मन ! हे देव ! हे सखा। तू हमारे जीवन का संचार करने वाला है। हे प्रभु ! जब यज्ञ में अपने जीवन को ले जाते हैं, यज्ञमय जीवन बना देते हैं तो हमारे जीवन की जो स्वाभाविक प्रवृत्तियां हैं उनकी वास्तव में सुगन्धी के साथ-साथ ऊंची तरंगें अन्तरिक्ष में रमण करती हैं। जैसे वाक् से उच्चारण होते ही उसका विस्तार रूप बन जाता है इसी प्रकार यज्ञशाला में एक ब्रह्मा, उद्गाता मनोहर वेद मन्त्रों का पठन-पाठन करता है। वही सुगन्धित सहित शब्दार्थ देवताओं को पवित्र बना देते हैं। आओ ! मेरे भद्र आचार्य जनों ! ऋषि मण्डल ! आज हम सुन्दर यज्ञ करने में संलग्न होते चले जायें।

मुनिवरो ! जब हम यज्ञ के उद्देश्यों को, उसकी परम्परा को विचारते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि यज्ञ कितने महान् कष्टों से प्रारम्भ होता है। वेद ने कहा है कि एक मानव परमात्मा का चिन्तन करता है वह भी सुन्दर यज्ञ कर रहा है। एक मानव परोपकार में संलग्न है वह भी सुन्दर यज्ञ कर रहा है। हमारे यहां कोई अतिथि आता है उसका यथाशक्ति आदर करना, भोजन आदि कराना भी यज्ञ कहलाता है। जहां हम राष्ट्र के हित के लिए

कार्य करते हैं, प्रजा को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं वह भी एक प्रकार का यज्ञ कहलाता है। जहां-जहां भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों की परिक्रियाएं चलती हैं वहीं सुन्दरता छा जाती है। जितने हम सुन्दर काम करते हैं वे यज्ञ कहलाते हैं। एक सुन्दर यज्ञ वह भी होता है जिसमें ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्गाता होता है और यजमान का चुनाव होता है और चुनाव करके सुन्दर यज्ञ कर्म करते हैं तो उसकी परिक्रियाएं सुन्दर होती हैं। वह मानव की आयु को सुखी बनाने वाला होता है। वहां सुख और शान्ति के नवीन अंकुर उत्पन्न होते हैं। वहां बेटा! देवताओं का पूजन भी आता है। पति-पत्नी एक स्थान में विराजमान होते हैं और यजमान बनते हैं, तपस्या के साथ अपने जीवन को व्यतीत करते हैं। जैसे अग्नि में परमाणु तपते हैं और तप कर सूक्ष्म बन जाते हैं और सूक्ष्म बन करके महान् शक्तिशाली बन जाते हैं। इसी प्रकार हे यजमान! तू अपने जीवन को तपस्वी बना। जितनी तेरी मानवता सूक्ष्म होती चली जायेगी उतना ही तू शक्तिशाली बनता हुआ ब्राह्मणों का पूजन करता हुआ तू विशाल बन सकता है।

परन्तु मैं तो प्रत्येक शुभ कार्य को यज्ञ कहा करता हूं। एक मेरी पवित्र माता नियमानुकूल अपने गर्भ से लेकर के जीवन अग्रणों (आरम्भिक काल से लेकर गुरुकुल जाने तक) तक अपने प्यारे पुत्र की रचना करती है वह भी सुन्दर यज्ञ कर्म कहलाता है। इसी प्रकार एक राजा अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाने की पवित्र धारणा को लेकर के आगे चलता है और प्रजा को सुखी बनाने का प्रयत्न करता है वह भी एक सुन्दर यज्ञ कर्म करता है। परन्तु वह कौन-सा यज्ञ है जहां इस लोक में और परलोक दोनों में सुख प्राप्त होता है। यह यज्ञ जिसमें ब्रह्मा का चुनाव होता है, यजमान का चुनाव होकर के यजमान की पत्नी कहती है "हे यज्ञ पते" हे यज्ञ को रचाने वाले यजमान मैं तेरे समीप हूं। आज तू ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ, त्याग तपस्या के द्वारा, पृथ्वी में आसन लगाता हुआ यज्ञ कर्म को पवित्र बना। तेरी प्रवृत्तियों से ही हे देव! यह यज्ञ कर्म हमारा श्रेष्ठ बन सकता है। जब इस प्रकार की प्रार्थना और विनय की जाती है तो उस समय यज्ञ कर्म सफल होते हैं। अन्यथा सफल नहीं हो पाते।

मेरे भद्र आचार्य जनो! यज्ञ वह होता है जिसमें किसी भी प्रकार की कामना उत्पन्न नहीं होती। जब किसी भी प्रकार की कामना उत्पन्न नहीं

होती तो वह निष्काम कर्म कहलाता है। यज्ञ में ऋत्विज कौन होता है ? जो ऋत को जानते हैं। वह ऋत क्या है ? "ऋतम् ब्रह्म ऋतम् या ब्रह्मणी वाला घृते निराधन्नम् ब्रह्मणे वाचा देव ऋतव प्रभा गति नश्चताः।" मुनिवरो ! आचार्यों ने कहा है कि ऋत वह कहलाती है जो प्रकृति में सूक्ष्म तन्तु होते हैं जैसे मेघ मण्डलों में विद्युत अपना प्रकाश देती है। उस विद्युत से भी सूक्ष्म परमाणु होते हैं। सूक्ष्मत्व का नाम ऋत कहलाता है और यज्ञशाला में वही ऋत्विज बनने का अधिकारी होता है जिसके विचार विस्तृत हों, जो अन्न से पवित्र हो, शारीरिक और मानसिक विचारों में उसकी धारणा हो, ब्रह्मचर्य को पालन करता हुआ वह श्रेष्ठतम हो।

मेरे प्यारे महादन्द जी ने एक समय मुझे वर्णन करते हुए कहा कि आधुनिक काल के जितने शुभ कर्म होते हैं वह सफल नहीं होते। उनका कोई प्रभाव नहीं होता। मैंने कहा कि भाई क्यों नहीं होता ? महानन्द जी ने कहा कि प्रभु यह मुझे प्रतीत नहीं। मैंने कहा कि भाई मुझे तो एक ही वस्तु प्रतीत होती है और वह यह है कि जो कार्य करते हैं उसमें आस्था और दृढ़ता नहीं होती। यदि आस्था और दृढ़ता हो तो उसका सुन्दर कर्मकाण्ड नहीं होता, यदि कर्मकाण्ड सुन्दर हो तो वेद पाठ शुद्ध नहीं होता, यदि वेदपाठ भी सुन्दर हो यज्ञ करने वाले ब्रह्मचारी ऋत को जानने वाले नहीं होते। इसलिए बेटा ! यज्ञ कर्मों का प्रभाव अधिक नहीं होता। प्रकृति के कणों में वह वस्तु ओत-प्रोत होती है जो कणों से भी सूक्ष्म होती है। यज्ञ की सुगन्धि, प्रभा और वेद मन्त्रों के साथ-साथ जो 'स्वाह' है वह ध्वनि यदि ऋत को जानने वाले, वाणी के ऊपर संयम करने वाले पुरुष के द्वारा की जाती है तो वह अग्नि में अव्रणों के तत्वों में इतनी सूक्ष्म बन जाती है कि प्रकृति के कण-कण में व्याप्त होकर के उसका कई गुना प्रभाव होता है। एक गुना नहीं, दो गुना नहीं सहस्रों गुना प्रभाव होता है। इसलिए मेरे पवित्र आचार्य जनों ! हमें विचार विनिमय करना है मन से, कर्म से, वचन से हम सुन्दरत्व में विचरण करें और उसी के अनुकूल हम यज्ञ कर्म करने के लिए संलग्न हों।

मुनिवरो ! मुझे स्मरण आता है जब राजा दशरथ के यहां पवित्र यज्ञ कर्म हुआ। उस समय तीनों पत्नियां और राजा दशरथ लगभग एक वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हुए पृथ्वी में उनका आसन रहा।

जब यज्ञ का समय हुआ तो ब्रह्मा की आवश्यकता हुई। महर्षि वशिष्ठ से कहा कि प्रभु यज्ञ का समय हो गया है यज्ञ आरम्भ कराइये। तो ऋषि बोले मैं तो यज्ञ कर्म कराने का अधिकारी नहीं हूं, जिस विषय को मैं जानता नहीं उस विषय को लेकर के मैं यज्ञ कर्म करूंगा तो यह मेरे में सामर्थ्य नहीं। राजा ने कहा तो क्या होना चाहिए प्रभु! उन्होंने कहा 'शृंग ब्रह्मणे वात नः धर्मश्चतिः ब्रह्मचर्याः वासो नरोति वृहणामि अप्यातत् कदितम जति बन गृति अस्ते।' ऋषि ने कहा 'हे राजन! उस यज्ञ को कराने का अधिकारी तो महर्षि शृंगी कहलाते हैं उन्हें किन्हीं भी गुणों से कजली वन से लाइए जहां उनके पिता की उन्हें संयमी बनाने की धारणा रहती है। आप ऐसे महापुरुष को ओत-प्रोत कराकर सुन्दर यज्ञ कराइये।' उस समय मुनिवरो! राजा दशरथ उर्वशी आदियों के द्वारा भयंकर वनों से उस ऋषि आत्मा को लाये। कहा जाता है वह उस समय १०१ वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचारी थे। उन यज्ञों का बेटा! कितना अधिक प्रभाव होता है। इसलिए ऋषि मुनियों ने कहा है कि यज्ञ कर्म करने में कितनी पवित्रता, कितनी सूक्ष्मता और कितनी मानवता होनी चाहिए।

मेरे भद्र पुरुषो! मैं अभी-अभी उच्चारण कर रहा था कि हम सुन्दर यज्ञ कर्म करने में तत्पर हों जिससे हमारा जीवन सर्वश्रेष्ठ और विस्तारवादी हो। जितनी हमारे जीवन में सूक्ष्मता होगी उतनी ही आयु दीर्घ होगी। भद्र पुरुष जनो! 'ग्रणित भम्भवा मानाः त्री गणम् ब्रह्मणे वाचनोति ब्रह्म लोके सर्वाः।' मुनिवरो! जहां लोक में, परलोक में हमारी प्रतिष्ठान हो वह कर्म सर्वश्रेष्ठ कहलाते हैं। उन श्रेष्ठ कर्मों में हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिये। जब हमारी प्रवृत्ति सुन्दर कर्मों में संलग्न हो जाती है तो हमारा जीवन तेजस्वी बन जाता है।

मेरे आदि आचार्य जनो! मैंने बहुत पूर्वकाल में ब्रह्मा के सम्बन्ध में प्रकट करते हुए कहा था कि सबसे पूर्व ब्रह्मा ने संसार के लिए महान यज्ञ कर्म किया। उनकी प्रदीप्त की हुई अग्नि अब तक यज्ञशाला में प्रदीप्त होती चली जा रही है। उसमें महान पुरुष आए और आकर के अपने महान कणों को त्याग कर चले गए परन्तु ऋषि परम्परा और जो आदि ब्रह्मा की वेदी थी उसमें कोई सूक्ष्मता नहीं आई।

मुनिवरो ! जिस समय वशिष्ठ मुनि महाराज से यह प्रश्न किया गया कि हमारे यहां राष्ट्र और यज्ञ में क्या भिन्नता (भेदता) है तो उस समय ऋषि वशिष्ठ ने कहा कि राष्ट्र और यज्ञ में कोई भिन्नता नहीं। राजा के राष्ट्र और यज्ञ में कोई भिन्नता नहीं है जब राजा के राष्ट्र में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी यज्ञ कर्म करने वाले होते हैं, राष्ट्र गृह में रहने वाले पति और पत्नी सुन्दर यज्ञ करने में तत्पर रहते हैं, शिक्षालयों में सुन्दर यज्ञ की वेदी ध्वनि का प्रातःकाल में प्रसारण होता है और उसके पश्चात् और विषयों का अध्ययन किया जाता है वह राष्ट्र सर्वोत्तम कहा जाता है। जिस राजा के राष्ट्र में इस प्रकार के विधान और नियम होते हैं वह राजा संसार में चक्रवर्ती राजा होता है।

मुनिवरो ! यहां वर्णन आता है महापुरुषों का और महान राजाओं का जैसे महाराजा हरिश्चन्द्र जो स्वप्न में भी कोई वाक्य मिथ्या उच्चारण नहीं करते थे। अपने राष्ट्र में यज्ञ कर्म करते थे और मन में धारणा रहती थी कि मैं राष्ट्र को इन्द्रपुरी तक पहुंचाना चाहता हूं। यज्ञ कर्म करते-करते जब मुनिवरो ! उनका ९९वां यज्ञ प्रारम्भ हो रहा था तो दुर्वासा ऋषि महाराज उस यज्ञ के ब्रह्मा चुने जाने के पश्चात् रात्री के समय महाराज हरिश्चन्द्र विश्रामशाला में विश्राम कर रहे थे। उसी समय उन्हें स्वप्न हुआ 'प्रभा गच्छतम् संगमम् ब्रहे गति कन्याःरण्द्रनम् ऋषि विश्वम् ब्रह्मे वाचनोति' कि एक सुन्दर कन्या है और एक महान पुरुष संन्यासी है और संन्यासी ने कहा कि महाराज मुझे दान दो। हरिश्चन्द्र ने कहा जो इच्छा हो। संन्यासी ने कहा कि मुझे यह राष्ट्र अर्पित कर दीजिए। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। जब राष्ट्र को हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में त्याग दिया तो कन्या ने कहा कि प्रभु ! मुझे भी दान दो और मुझे ढाई लाख स्वर्ण प्रदान कीजिए।

मुनिवरो ! राजा हरिश्चन्द्र ने वह भी अर्पित कर दिया। अर्पित कराते हुए प्रातःकाल हुआ, जागृत हुआ तो विचार आया कि तुमने तो यह राष्ट्र सब कुछ दान कर दिया था परन्तु दान लेने कोई नहीं आया। इतने में मुनिवरो ! विश्वामित्र एक सुन्दर कन्या को लेकर महाराजा हरिश्चन्द्र के द्वार पर आ पहुंचे और उन्होंने कहा कि महाराज ! मैंने दान की इच्छा प्रकट की थी, आपने नहीं दिया। राजा ने कहा प्रभु मैंने तो स्वप्न में ही

अर्पित कर दिया था लीजिए राष्ट्र को। राष्ट्र देने के पश्चात् जो कन्या संन्यासी के पिछले विभाग में थी कहा कि प्रभु ! मैंने दान मांगा था कि मुझे ढाई लाख स्वर्ण दीजिए। उन्होंने कहा कि चलो देवी। जब राष्ट्र में से ढाई लाख स्वर्ण देने का प्रश्न आया तो ऋषि ने कहा कि महाराज यह राष्ट्र तो आपने मुझे दान में दे दिया है अब इसमें से दान देने का आपका अधिकार नहीं रहा।

तो मुनिवरो ! राष्ट्र को त्याग करके पत्नी और पुत्र को एक ब्राह्मण के यहां गिरवी रख ढाई लाख स्वर्ण उस कन्या को अर्पित किया और शूद्र गृह में उन्होंने कुछ कार्य किया। यह दान की पवित्र महिमा है। जो इतने त्याग और तपस्या में परिणत होने वाला हो आज उसकी संसार में कितनी आवश्यकता है।

बेटा ! मैं उच्चारण कर रहा था कि हम अपने जीवन को यज्ञमय बनाएं हमारा जीवन परमात्मा ने रचा है, वह दान द्वारा, त्याग और तपस्या द्वारा, यज्ञ कर्म करने के लिए रचा है। अन्यथा इसके रचने का कोई उद्देश्य नहीं। क्योंकि जितने शुभ कर्म मानव शरीर से किये जाते हैं वे और शरीरों से नहीं किये जाते। जब नहीं किये जाते तो जो भी धर्म करता है वह सब यज्ञ कर्म कहलाता है। परन्तु जहां जितने परोपकार के यज्ञ, राष्ट्रीय यज्ञ, सर्वस्व यज्ञ होते हैं इन सब यज्ञों में निष्काम यज्ञ श्रेष्ठ होता है। जिसमें कोई कामना न हो, धारणा न हो वह यज्ञ देवताओं के निमित्त किया जाता है। वह अपना एक उद्देश्य और कर्त्तव्य होता है। कर्त्तव्य को लेकर के जो कार्य किया जाता है तो बेटा ! वह यज्ञ कर्म सर्वश्रेष्ठ कहलाता है।

——

मनुष्य का जीवन यज्ञमय हो

(७ नवम्बर १९६३ यज्ञ पण्डाल बी०सी० पार्क, सरोजनी नगर, नई दिल्ली)

देखो मुनिवरो अभी-अभी हमारा पर्यण समय समाप्त हुआ। आज यह वेद का अमूल्य ज्ञान क्या कह रहा था जिसको उच्चारण करते समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे परमपिता परमात्मा हमारे जीवन को उज्ज्वल बना रहे हैं और हमारा हृदय उस परमात्मा से मिलान करने जा रहा हो। इच्छा तो यह नहीं थी कि इतने सौन्दर्य वाले वेद पाठ को त्याग करके दूरी चले जायें परन्तु क्या करें मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई स्थानों में संकेत कराया। आज इनके संकेतानुकूल बहुत से वाक्यों का प्रतिपादन करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

आज मेरे प्यारे महानन्द जी बड़े आनन्दित हुए विराजमान हैं। मुझे अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है कि इनकी आत्मा इतना उत्सव क्यों मना रहा है। ? परन्तु मुझे ऐसा ज्ञान होता है जैसे यह कोई परोपकार की भावना ले करके इस यज्ञशाला में पधारे हैं।

आज हृदय तो मेरा कुछ और ही पुकार रहा है। मैं तो अपने प्रभु से कहा करता हूं हे परमदेव ! तू कल्याण करने वाला है। आज संसार में प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या के हृदय में उस उज्ज्वलता को दे जो आपने सृष्टि के प्रारम्भ में प्रत्येक वेद मन्त्र द्वारा हमें प्रेरणा दी है। उस प्रेरणा को पुनः से जागृत कर। विधाता ! आपने सृष्टि का निर्माण किया और सर्वप्रथम मानव के लिए ज्ञान का स्रोत दिया। उस आनन्द के स्रोत को आज भी दे ? किसको दे ? महान पात्रों को दे। आज हमारे हृदय को पवित्र बना जिससे हम संसार में उज्ज्वल बनें। विधाता। जब आपकी कृपा होगी तब आपकी दया के पात्र बनेंगे। हे भगवन ! तू दया कर और इतनी दया कर कि हमारी आत्मा के द्वारा कोई दोष न आए। विधाता ! जब हमारी आत्मा के द्वारा नाना प्रकार के दोष आ जायेंगे तो हमारा जीवन जीवन न रहेगा। प्रभु ! दया कर।

आज हमें वक्ता नहीं बनना चाहिए। आज तो हमें अपने जीवन में संलग्न हो जाना है। जब तक हमारा स्वयं का जीवन ऊंचा न होगा तब तक हम संसार में किसी मानव को ऊंचा नहीं बना सकते। मैंने आज से बहुत पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रश्न किया था कि यह संसार कैसे ऊंचा बन सकता है। उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक ही वाक्य कहा था 'यज्ञो मम् अस्ति यज्ञाः' जब मानव का जीवन यज्ञ जैसा पवित्र हो जाता है तो उसका जीवन इतना विचित्र बन जाता है कि उसके शरीर के कण-कण से उस यज्ञ की ज्योति प्रज्ज्वलित हो जाती है। मैंने अपने गुरुदेव से कहा कि प्रभु ! आप भी 'यज्ञाः'। उस समय उन्होंने कहा कि यदि मैं यज्ञ न करता तो मेरा जीवन यज्ञमय न होता। तो आज गुरु अस्चति विश्वम् भोगी नाना अस्ते' अहा ! आज मुझे गुरु कोई न कह सकता था। जिज्ञासु बनने के पश्चात् गुरु की उपाधि प्राप्त होती है। तो मुनिवरो देखो यह यज्ञ है।

आज मैं अपने प्यारे महानन्द जी के हृदय की वार्ता को जान रहा हूं। विषय तो और ही था परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी की आन्तरिक भावना यह कह रही है कि गुरुदेव आज यज्ञ के सम्बन्ध से कुछ प्रकरण दें। आज मुझे यज्ञ के सम्बन्ध में पुनः से उच्चारण करने का सौभाग्य मिला है। मैं यज्ञ के सम्बन्ध में केवल इतने वाक्य ही कहना चाहता हूं कि मेरी प्यारी माताओं का, मेरे प्यारे भद्र पुरुषों का, मेरे प्यारे ऋषि मण्डल का जीवन यज्ञमय हो।

यज्ञ क्या है

यज्ञ वह पदार्थ है जो मनुष्य का परमात्मा से मिलान कराता है। आज हमें यज्ञ करते हुए परमात्मा से मिलान करना है। आज यज्ञ करते हुए हमें संसार की त्रुटियों को नहीं देखना है। भौतिक यज्ञ करते हुए आध्यात्मिक यज्ञ में संलग्न हो करके परमात्मा से मिलान करना है। आज उस ब्रह्मा से मिलान करना है जिस ब्रह्मा ने सृष्टि को रचाया है।

मानव संसार में केवल यज्ञ वेदी को रचा सकता है। जैसे परमपिता परमात्मा ने सृष्टि रूपी यज्ञ वेदी को उत्पन्न किया है। जिसमें नाना लोक-लोकान्तर हैं। परमात्मा ने ब्रह्मा बन करके इस संसार रूपी यज्ञ के कर्मकाण्ड (नियम) को बना दिया जो आज तक चले आ रहे हैं और उस काल तक रहेंगे जब तक यह सृष्टि रहेगी। इसी प्रकार आज हमें यज्ञ के कर्मकाण्ड में

इस प्रकार संलग्न हो जाना है कि आज हम जो यज्ञ का विधान बना लेवें वह संसार में अमर रहे। जिस प्रकार परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य रूपी प्रकाश दिया और तब से यह प्रकाश चलता आ रहा है और उस काल तक रहेगा जब तक यह सृष्टि रहेगी। इसी प्रकार आज हमें यज्ञ के कर्मकाण्ड में इस प्रकार सलग्न हो जाना है कि आज हम जो यज्ञ का विधान बना लेवें वह संसार में अमर रहे। जिस प्रकार परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य रूपी प्रकाश दिया और तब से यह प्रकाश चलता आ रहा है और उस काल तक चलता ही रहेगा जब तक यह संसार रहेगा। इसी प्रकार आज हमें भी वह यज्ञ करना है।

आज से पूर्व काल में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि यज्ञ करो। ऐसा सुन्दर करो, ऐसी आन्तरिक भावनाओं से करो कि जिससे तुम्हारा मिलान उस परमपिता परमात्मा से हो जाए। जिस प्रकार परमात्मा ने सृष्टि रूपी यज्ञ वेदी को उत्पन्न किया है उसी प्रकार आज तुम भी भौतिक यज्ञ को उत्पन्न करो जिससे ज्ञान और विज्ञान उत्पन्न होता है। जिससे हमें ज्ञान और विज्ञान की प्रेरणा मिलती है।

मुनिवरो देखो! महाराजा कृष्ण की एक वार्ता मेरे कंठ आ गई। भगवान कृष्ण ने महारानी रुक्मणी से यज्ञ के सम्बन्ध में क्या शब्दार्थ कहे? महाराजा अर्जुन ने महारानी द्रोपदी से क्या शब्दार्थ कहे? आज मुनिवरो यदि मैं संसार की पोथी को लेकर चलता हूं तो विचार आता है कि यज्ञ मनुष्य का क्या-से-क्या कर देता है। भगवान कृष्ण से महारानी रुक्मणी ने एक समय प्रश्न किया कि यह जो आप यज्ञ करते हैं क्यों करते हैं? इससे आपको क्या लाभ है? भगवान कृष्ण ने कहा—"हे देवी! मैं जो इस यज्ञ को कर रहा हूं मैं चाहता हूं कि मेरा मिलान परमात्मा से हो जाए। मेरी जो आन्तरिक भावना है, आन्तरिक जो तरंगें हैं वह परमात्मा से प्रेरित हों। परमात्मा से सहायता लेकर संसार का कार्य त्याग पूर्वक करता चला जाऊं। यह जो यज्ञशाला है यह त्याग की भावना देती है। मुझे यज्ञशाला में विराजमान हो करके कैसा त्याग मिलता है? जब होता और यजमान घृत आदि अग्नि में त्यागते हैं तो उन्हें ज्ञात नहीं कि तूने जो त्याग किया है इसका फल क्या होगा? हे देवी! आज मैं यज्ञ कर रहा हूं परन्तु त्याग भावना से। हमने घृत, सामग्री आदि की जो

भी आहुति दी अग्नि सबका त्याग कर देती है और उन्हें अन्तरिक्ष में रमण करा देती है। उसको देवता ग्रहण करते हैं। देवता उसको पान करके हमारे सुख की वृष्टि करते हैं।

मुनिवरो ! आज हमारे हृदय में यह त्याग की भावनाएं ही होनी चाहिएं। यज्ञ हमें त्याग देता है, यज्ञ हमें अच्छी आत्मिक भावनाएं देता है। मुनिवरो ! इस भौतिक यज्ञ के साथ-साथ हमें आत्मिक यज्ञ भी करना है। वह आत्मिक यज्ञ क्या पदार्थ है ?

आत्मिक यज्ञ, मुनिवरो ! वह यज्ञ है जो हमें परमात्मा से मिलान कराता है। हम उस माता की गोद में विराजमान हो जाते हैं जो हमारा कल्याण करने वाली है। जिसको हमारे वेदों ने दुर्गा कहा है, मां काली कहा है और बहुत से रूपों से पुकारा है। हम उच्चारण कर रहे थे क्या "यज्ञाः भौतिक यज्ञाः। आज हमें आत्मिक यज्ञ भी करना चाहिए। होता हमारे कौन हैं ? हमारी सामग्री क्या है ? कौन अग्नि है ? कौन हमारा ब्रह्मा है ? इसके ऊपर हमें पूर्ण अनुसंधान करना चाहिए।

मुनिवरो ! आज हमारा संकल्प व विकल्प आहुति देने वाला है जहां हम काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह सबकी सामग्री बना लेते हैं और ज्ञान रूपी अग्नि में इन सबको भस्म कर देते हैं, उस समय हमारा आत्मिक यज्ञ हो जाता है। इस यज्ञ का ब्रह्मा वह है जिसकी प्रेरणा से हम इस यज्ञ को करने के लिए विराजमान हो जाते हैं। बेटा ! आन्तरिक प्रेरणा हमारा आत्मा है जो हृदय स्थल रूपी यज्ञशाला में विराजमान है। इस यज्ञ द्वारा उस आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से हो जाता है। जिस समय परमात्मा की गोद में जा बैठेंगे उस समय हमारे आनन्द का कोई अपार न रहेगा। मुनिवरो !हमारे आदि ऋषियों ने कहा है कि जब-जब यह आत्मा उस परमात्मा की गोद में विराजमान हो जाता है तो इसका जो नास्तिक परिवार है वह सब समाप्त हो जाता है और आस्तिक परिवार इसके द्वारा आ जाता है। अपने परिवार सहित यह परमात्मा में रमण कर जाता है। तो यह है मुनिवरो ! आत्मिक यज्ञ जो आज हमें करना है। नाना इन्द्रियों के विषयों पर विचार करना है।

मुनिवरो ! देखो, परमात्मा ने मानव का शरीर इसलिए बनाया है कि इसमें ओज और तेज हो। रसना परमात्मा ने दी इसमें ओज उत्पन्न करो।

यह रसना किस पदार्थ की इच्छुक है ? वह है सरवस्ती । मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे निर्णय कराया कि आजकल संसार में मानव इस वाणी इस रचना के पीछे इतना है कि अपने मानवता को त्याग बैठा है । इस वाणी से तो हमें मानव बनना है । इस वाणी से हमें ब्रह्मा बनना है । इस वाणी से राम बनना है । इस वाणी से हमें कृष्ण बनना है । इस वाणी के ऊपर हमें विचार करना है ।

आज देखो !दूसरों के भक्षणम् करने से हमारा यज्ञ सम्पन्न नहीं होगा । आज । जब तुम्हारे द्वारा आहार और व्यवहार पवित्र होंगे तो तुम्हारी भावनाएं भी पवित्र होंगी, उच्च विचार होंगे । अपनी काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की सामग्री बनाकर ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म कर देना है । भौतिक यज्ञ के साथ आत्मिक यज्ञ भी करो जिससे आज तुम्हारा कल्याण हो । कल्याण की भावनाएं तुम्हारे द्वारा आएं ।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय मुझे आर्यों का प्रश्न निर्णय कराया । परमपिता परमात्मा की कृपा से मुझे वह समय देखने का सौभाग्य मिला है जब सर्वत्र संसार में आर्यों की पताका लहराती थी । आर्यों की पताका किस काल में थी ? भगवान राम के राष्ट्रों में आर्यों की पताका थी जिन्होंने अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाया । आज देखो ! आर्यत्व क्या कहता है ? मर्यादा को ऊंचा बनाओ । हमारे द्वारा मर्यादा क्या है ? मुनिवरो हमारे द्वारा एक आन्तरिक भावना और भौतिकवाद है । दोनों को ऊंचा बनाना है । दोनों में ज्ञान और विज्ञान की प्रेरणा देनी है । यज्ञ की मर्यादा ज्ञान विज्ञान से चलती है । आज संसार आर्य बनना चाहता है । मैं तो यह कहा करता हूं कि आर्यों का जीवन यज्ञमय होता है । दोनों प्रकार के यज्ञों का कर्म उनकी भुजाओं में होता है । उनके द्वारा 'ओ३म्' की पताका होती है, 'मर्यादा' की पताका होती है, 'यज्ञ' की पताका होती है, "राष्ट्र' की पताका होती है तो संसार का कल्याण होता है ।

आज यहां समालोचना करने से संसार का उत्थान न होगा । दूसरों की त्रुटियां देखने से संसार का कल्याण न होगा । आप अपनी त्रुटियां देखने से संसार का कल्याण होगा । मेरे प्यारे महानन्द जी कहेंगे कि गुरुजी यह क्या उच्चारण करने लगे अपनी त्रुटियों को देखकर ही संसार आर्य बनकर अपनी

त्रुटियों पर विचार करेगा कि मेरे द्वारा कितनी त्रुटियां हैं, मैं कितना पापी हूं तो उस समय मानव का कल्याण होगा। आगे चलकर आगे बढ़ते रहेंगे और ससार को ऊंचा बना सकेंगे। आज संसार में हमें यह नहीं देखना कि यह मानव किस प्रकार का है, राष्ट्र किस प्रकार का है, संसार में क्या हो रहा है? आज हमें यह देखना है कि मेरे द्वारा कितनी त्रुटियां हैं। क्या वेद की पोथियों को जानने से मेरा कल्याण होगा ?कदापि नहीं। इस सम्बन्ध में आदि ऋषियों ने, महाराजा वशिष्ठ जैसे आचार्यों ने कहा है कि तुम वेद की पोथियों को जानो अवश्य, परन्तु अपनी आत्मा के भाव को भी जानो। यह जो काम, क्रोध, मद, लोभ व मोह आदि के मल विक्षेप आवरण हैं इन्हें ज्ञान अग्नि में भस्म करके शान्त करो।

ज्ञान हमें कहाँ से आएगा ?

ज्ञान हमें किसी का आसरा लेने से आएगा। जब हम किसी के सहायक बन जाएंगे। जब किसी के सेवक बनकर चलेंगे। हमें सेवक बनना है तो प्रभु के द्वारा सब कुछ अर्पण करना है। आप प्रभु के द्वारा कौन सा पदार्थ अर्पित कर सकते हैं ? प्रभु के द्वारा जाएं तो कौन-सा पदार्थं अर्पित कर सकते हैं ? वह कौन-सा अमृत प्रभु ने हमारे द्वारा दिया जिसको लेकर हम प्रभु के द्वारा जाएं ? वह है बेटा ! 'यज्ञ'।

हम सांसारिक भौतिक यज्ञ करते हैं। इस यज्ञ की वासनाएं उसमें जो पवित्र आहुति देंगे वह देवताओं तक जाएगी। हमारे द्वारा जो प्राण सत्ता है वह पवित्र होगी। प्राण पवित्र होंगे तो हमारे मल विक्षेप शान्त होंगे और हमारी आत्मा निर्मल और उज्ज्वल बन करके उस परमात्मा के द्वारा ले जाएगी। परमात्मा के द्वारा ले जाएगा अपना किया हुआ ऊंचा स्थल। मुनिवरो ! परमात्मा का ऊंचा स्थल क्या है ? वह है ज्ञान।

मुझे महात्मा अगस्त्य की वार्ता वारम्बार कंठ आती रहती है। हे माता ! तू अगस्त्य को उत्पन्न कर। हे माता ! तू इस संसार में आई है तो इस यज्ञ को कर, तू अगस्त्य जैसे को उत्पन्न कर, जिस महात्मा अगस्त्य ने तीन बार आचमन करते ही समुद्र को पान कर लिया था। आज तू उस महात्मा को क्यों उत्पन्न नहीं करती है ? हे माता पार्वती तू कहां है ? हे दुर्गे तू कहां है। हे मां ! तू कहां है ? तू परमात्मा से मिलान कराने वाली है। तू

किस स्थान पर जा पहुंची है ? मुनिवरो ! महात्मा अगस्त्य ने तीन आचमन किए, वे क्या हैं ? वे हैं ज्ञान, कर्म और उपासना। महर्षि अगस्त्य ने ये तीन आचमन किये और संसार रूपी समुद्र को पान किया। आज हम भौतिकवाद में हैं, आत्मिक विचार नहीं किया। यह संसार समुद्र है। जो मनुष्य इस समुद्र में लालायित हो जाता है वह समुद्र में गोते ही लगाता रहता है। वह बारम्बार अपने जीवन को समाप्त करता है। महात्मा अगस्त्य ने कहा था कि जब मानव इस संसार रूपी समुद्र को पान करके आगे बढ़ता है तो वास्तव में उसका कल्याण होगा।

बेटा ! उच्चारण करते-करते वहुत दूरी चले गए। उच्चारण कर रहे थे यज्ञा:। आज हमें यज्ञ करना है। हमारे द्वारा जो भी कुछ है वह सब ही कुछ यज्ञ है। मन है, यह भी यज्ञ है। 'इन्द्रियां' यह भी यज्ञ है। भौतिण यज्ञ करने के लिए जो द्रव्य हमारे द्वारा है यह भी यज्ञ है। आज हमें इसका सदुपयोग करके चलना है यह सब यज्ञ हैं। हमारे द्वारा परमात्मा की दी हुई जो सामग्री है वह सब यज्ञ हैं। परन्तु आज हमें विचारना है कि इनमें से हमें कौन-सा यज्ञ करना है जिससे हमारा कल्याण होगा। जब भौतिक यज्ञ के पश्चात् आत्मिक यज्ञ करेंगे तो हम परमात्मा से मिलान कर सकेंगे। एक समय वह होगा ! बेटा। जब हम परमात्मा की गोद में होंगे।

मैं तो प्रभु से कहा करता हूं कि हे प्रभु हम कैसे अभागे हैं संसार में। मैं तो वह कर्म करना चाहता हूं जिस कर्म को करके प्रभु ! मैं तुम्हारी गोद में आ जाऊं। भगवन ! मैंने आज से पूर्व काल में जो पाप किया है उसे क्षमा करो। आज मैं क्षमा चाहता हूं। प्रभु तू आज मुझे अपनाकर अपनी गोद में ले।

मुनिवरो ! जब वह ज्ञान ही हमारे द्वारा न होगा तो प्रभु को गोद में कैसे प्राप्त होंगे ? आज हम अपनी वाणी से उच्चारण तो कर रहे हैं कि प्रभु तू मुझे अपनी गोद में ले और अपनी लोरियों में आनन्दित करा। परन्तु जब हमारा आत्मा निर्मल और पवित्र हो जायेगा तो उस समय परमात्मा स्वयं अपने इस प्यारे पुत्र आत्मा को अवश्य अपना लेगा। जैसे मुनिवरो ! माता-पिता अपने प्यारे योग्य बालक को जानकर स्वयं अपना लेते हैं। इसी प्रकार जब यह आत्मा परमात्मा के योग्य हो जायेगी तो यह परमपिता परमात्मा इस आत्मा को अवश्य अपनायेगा। ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि न अपनाये। वह इस आत्मा का पिता है। जब यह आत्मा निमल, पवित्र और

दुर्गुणों से रहित हो जायेगा और वह परमात्मा इस आत्मा को अवश्य अपनी गोद में धारण करेगा। अपनायेगा उसी काल में जब हम उस प्रभु की आज्ञा में कर्म करेंगे। आज मानव को परमात्मा द्वारा जाने के लिए तथा मानसिक शान्ति पाने के लिए सबसे ऊंचा कर्म जो हमारे ऋषि-मुनियों ने, सबने कहा है कि यदि तुम्हें आज उच्च बनना है तो अपने जीवन को यज्ञ जानो, अपने जीवन को यज्ञमय जानो। आज संसार में जो भी मनुष्य आता है भोग भोगने के लिए आता है परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी कहा करते हैं कि आधुनिक काल में तो भोगों ने इन्हें भोग लिया है। जब मुझे महानन्द जी के यह वाक्य कण्ठ आते हैं तो विचार आता है कि मेरे प्यारे क्या वाक्य कहा करते हैं ? कैसे सुन्दर इनके वाक्य हृदयग्राही हैं।

मुनिवरो देखो ! मनुष्य भोग भोगने के लिए आता है। परन्तु जो भोगों को अपना जीवन दे देता है वह मनुष्य नहीं कहलाता, वह तो एक प्रकार का पशु कहलाता है। संसार में आज हमें मानव बनना है। भोगों को भोगते हुए हमें अपने जीवन को यज्ञमय व्यतीत करना है। हमें वेद रूपी गंगा में स्नान करना है। वेदों का स्रोत उस परमात्मा ने आज नहीं सृष्टि के प्रारम्भ में दिया है। इसके ज्ञान-विज्ञान पर अनुसन्धान करके चलना है।

राजा रावण से एक समय महर्षि क्रूकेतु ऋषि महाराज ने एक प्रश्न किया कि क्या तुमने वेदों को जाना है ? रावण ने कहा कि महाराज मैं वेदों को अच्छी तरह जानता हूं। तब महर्षि बोले तुमने वेदों को कैसे जाना है ? कौन से स्थल का जाना है ? राजा रावण ने कहा कि प्रभु ! वह परमात्मा का अमूल्य ज्ञान है । परमात्मा की उसमें अमूल्य निधि है। तब महर्षि ने कहा कि वेदों में और कुछ क्या है ? तो राजा रावण ने कहा कि वेदों में संसार का ज्ञान विज्ञान है। वह ज्ञान क्या है ? भगवन ! ज्ञान-विज्ञान यह है कि संसार का ज्ञान करो और उसके पश्चात् भौतिक ज्ञान द्वारा देखो इस संसार को। उस समय ऋषि ने कहा कि अरे भौतिक विज्ञान से नहीं देखा जायेगा संसार। आज तुम सबसे पूर्व ज्ञान करो और ज्ञान के पश्चात् आन्तरिक भावना को जानो। इस आत्मा को मेरुदण्ड में ले जा करके इस आत्मा का परमात्मा से मिलान कर दो। जब यह आत्मा परमात्मा की गोद में जायेगा तब जानो कि संसार का यज्ञ करना तुम्हारा सफल हुआ है। उस समय तुम्हारा भौतिक और आत्मिक यज्ञ करना सफल हो जायेगा। उस समय वह आत्मा इस ससार

को भली भाँति देख सकता है जो परमात्मा ने रचाया है। इसके सब विज्ञान को जानने वाला बन जाता है।

तो मुनिवरो ! यह है आज का हमारा आदेश अब यह समाप्त होने जा रहा है क्योंकि समय भी अधिक हो चुका है। हम उच्चारण कर रहे थे कि हे परमात्मा तू कल्याण करने वाला है। आज हमारा जीवन यज्ञमय हो। यज्ञ वह है जो हमें भौतिक विज्ञान में लगाता है। यज्ञ वह है जो हमें मानव जीवन की प्रेरणा देता है। आज हमें पुनः से दोनों प्रकार के भौतिक और आत्मिक यज्ञ को करना है।

मुनिवरो देखो ! आज से बहुत पूर्व काल हुआ जब हमें कुछ यज्ञ कराने का सौभाग्य मिला। मुनिवरो ! उस काल में जब कजली वन में रमण किया करते थे। पर्वतों पर यज्ञ करने वाले पर्वतों में यज्ञ करते हैं। संसार में यज्ञ करने वाले संसार में यज्ञ करते हैं। राजा भी यज्ञ करता है। यदि राजा यज्ञ करता है तो प्रजा भी करती है और यदि प्रजा करती है तो संसार का कल्याण हो जाता है। जब प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या यज्ञ में संलग्न हो जायेगी और जानेगा कि मेरा जो द्रव्य है, मेरा जो मन है, मेरे जो नेत्र हैं, मेरे जो श्रोत्र हैं, मेरी घ्राण है, मेरी जो वाणी है, त्वचा व उपस्थ इन्द्रियां हैं यह सब कुछ परमात्मा ने मुझे यज्ञ के लिए ही दी हैं। इन सब इन्द्रियों से यज्ञ करना है। परमात्मा ने मुझे भुजायें क्यों दिये हैं ? दूसरों का परोपकार करने के लिए, अपनी रक्षा करने के लिए। इन भुजाओं से देवताओं को आहुति देने वाले बनें। देवता उसे पान करेंगे तो हमारी भुजायें बलिष्ठ होंगी। भुजायें बलिष्ठ होंगी तो परोपकार भी करसकते हैं और अपनी रक्षा भी स्वयं कर सकते हैं। तो मुनिवरो ! उच्चारण करते-करते बहुत दूरी चले गये। उच्चारण कर रहे थे 'यज्ञा'। हे भगवन ! तू यज्ञ को देने वाला है, प्रेरणा देने वाला है भगवन ! वह प्रेरणा दो जिससे हम अपना और इस संसार का कल्याण कर सकें। जब विधाता की दया होती है तो हमारी आन्तरिक भावना उज्ज्जल और पवित्र हो जाती है यह है मुनिवरो ! आज का हमारा आदेश। सौभाग्य मिला तो शेष वाक्य कल होंगे।

——

मानव को यज्ञ की प्रेरणा

(८ नवम्बर १९६३, यज्ञ पंडाल, सरोजनी नगर, नई दिल्ली)

देखो मुनिवरो ! अभी-अभी हमारा पर्यायण समय समाप्त हुआ। आज हम पुनः की भांति कुछ वेद मन्त्रों का गान गा रहे थे। आज से पूर्व मैंने कहा था कि हम संहिताओं का पाठकर रहे हैं। आज मुझे इस विवाद में नहीं जाना है कि वेद संहितायें कितनी हैं। हमें तो आज यह उच्चारण करना है कि यह वेद ज्ञान क्या पुकार रहा है? आज हमें पुनः से वेद रूपी वेदी पर आ जाना है जो हमें मानव बनाने के लिए बारम्बार संकेत दे रही है। सृष्टि के प्रारम्भ में यह वेदी पुकारती चली आ रही है कि हे मानव ! तू वास्तविक मनुष्य बन जैसा मेरा यह वेद कहता है। इस वेद वाणी के अनुकूल अपना जीवन बना।

मुनिवरो ! महानन्द जी का संकेत बारम्बार प्राप्त हो रहा है। जैसा कल मैंने यज्ञ के सम्बन्ध में कहा था आज भी यज्ञ के सम्बन्ध में प्रकाश दूंगा।

मुनिवरो ! आज हमें यज्ञ वेदी पुकार रही है कि मानव ! तू पुनः से इस यज्ञ वेदी पर आ। इस वेदी पर आ जाने से तेरा वास्तविक कल्याण होगा। तू मानव को मानव बना सकता है और अपनी मानवता को ऊंचा बना करके संसार पर तू शासन कर सकता है। जिस यज्ञ वेदी को हमारे ऋषि मुनियों ने प्रज्वलित किया है, जिस अग्नि में अपने जीवन की आहुतियां दी हैं अपने कण्ठ की वाणी को इस यज्ञ वेदी पर बलि देकर इस संसार को ऊंचा बनाया है, आज पुनः से इस यज्ञ वेदी पर आ जाना है।

हे मानव ! तेरा यज्ञ क्या है ?

मानव ! तेरा यज्ञ शुभ कर्म है। तेरा यज्ञ तेरा धर्म है। हे मानव ! तेरी सात्विकता तेरा यज्ञ है। तेरी विचित्रता तेरे सदाचार में है। जब तक तेरे द्वारा सदाचार नहीं आयेगा तू यज्ञ वेदी पर आने योग्य नहीं। आज यज्ञ वेदी पुकार रही है कि हे मानव ! यदि तू मेरे द्वारा आना चाहता है तो तू चरित्रवान बन करके आ। तू ओजस्वी और तपस्वी बन करके आ और मुझे प्रज्वलित कर।

आज मानव को यज्ञ वेदी पर आ जाना है। जिस यज्ञ वेदी पर आ

करके वर्ण व्यवस्था बनती है। जिस वेदी पर आ करके मानव के हृदय में राष्ट्र के कल्याण के लिए भावनायें आती हैं। जिस वेदी परआ करके मानव के हृदय में सात्विकता आ करके संसार के कल्याण करने के लिए अपने जीवन को प्रेरित कर देता है। आज मुझे पुनः से यज्ञ के सम्बन्ध में उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है और समय मिलेगा तो आगे भी यज्ञ के सम्बन्ध में उच्चारण करता चला जाऊंगा।

मुनिवरो! यह वह यज्ञ वेदी है, यह वह वेद का ज्ञान है जिस ज्ञान की पताका को महाराज वशिष्ठ मुनि महाराज, महर्षि पापड़ी मुनि महाराज़ और विश्वामित्र ने ले करके विश्व को ऊंचा बनाया। आज हमें उस यज्ञ रूपी वेद को अपनाकर विश्व को ऊंचा बनाना है। यह आज हमारी वेदी है। इस पर हमें विचारना है। हमें पुनः से उस अग्नि को प्रज्वलित करके हमें उस अग्नि को सूर्य तक, चन्द्रमा तक, बृहस्पति और ध्रुव लोकों तक पहुंचाना है।

मुनिवरो! आज यह नहीं कि संसार में ही इस यज्ञ वेदी का प्रसार करें। मैं तो प्रभु से कहा करता हूं हे प्रभु! मेरे में वह महत्ता और सत्ता दो कि मैं इस यज्ञ वेदी को यहां भी अपनाता जाऊं और सूर्य लोक में जाऊं तो वहां भी इसी प्रकार की वेदी उत्पन्न कर संसार को ऊंचा बनाता चला जाऊं। हे देव! आप कल्याण करने वाले हैं। मुझे वह सत्ता दो यदि मुझे आज्ञा मिले तो मैं ध्रुव मण्डल तक जाऊं तो वहां भी यज्ञ वेदी का प्रसार करूं। यज्ञमय मेरा जीवन हो।

प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या का जीवन परमात्मा ने यज्ञ वेदी के लिए दिया है। आज हमें यज्ञ वेदी को उत्पन्न करना है। शांत अग्नि को प्रज्वलित करना है, ज्योति देना है जो अग्नि हमें सूर्य और चन्द्रमा तक पहुंचा दे।

मुनिवरो! देखो 'यज्ञाः'। यह वह यज्ञवेदी है जिस पर आ करके मानव मानव बनता है। पापी भी मानव बनता है। दुराचारी भी सदाचारी बनता है। हे मेरे प्यारे भद्र पुरुषों! आओ। इस यज्ञवेदी पर आकर अपने सदाचार को अपनाओ। यज्ञवेदी पुकार रही कि हे मानव! तू दुराचारी बन करके

मेरे द्वारा न आ। यदि दुराचारी बन करके आयेगा तो हे मानव ! मैं दूर से ही तेरी उस कल्पना को भस्म कर सकती हूं जिसे तू लेकर आया है। आज तुझे संकल्प को धारण करके मेरे द्वारा आना है। संकल्प लेकर आएगा तो आज मैं तुझे मृत मण्डल में नहीं ध्रुव मण्डल तक पहुंचा सकती हूं। आज सदाचार को अपनाकर पुनः से यज्ञ वेदी पर आना है।

सदाचार को अपना कर वर्ण व्यवस्था को ऊंचा बनाना है। जैसा ऋषि मुनियों ने हमें आदेश दिया है। बहुत काल हुआ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझसे कहा करते थे कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक ऋषि मण्डल का कर्तव्य है कि अपनी यज्ञ वेदी की रक्षा करे। यह यज्ञ वेदी क्या है ? वह यज्ञ वेदी हमारी परम्परा है। हमारी संस्कृति, हमारा धर्म और ज्ञान है। आज हमें इस यज्ञ को ऊंचा बनाना है। इसकी रक्षा करती है। हे प्रभु ! हमें वह बल दो, वह सत्ता दो जिससे विधाता ! हम संसार रूपी महान वेदी की रक्षा कर सकें। जिस वेदी पर नाना प्रकार के खरदूषण जैसे दैत्य आ जाते हैं, हे देव ! यहां ताड़का जैसे राक्षस यज्ञ वेदी को भ्रष्ट करने आ रहे हैं, विधाता ! मैं चाहता हूं वह ताड़का आज मेरे द्वारा न आए वह खरदूषण मेरे द्वारा न आएं। आज विश्वामित्र और राम जैसे आ करके इसकी रक्षा करें। आज उस भगवान राम वाले सदाचार को अपनाना है जिससे यज्ञ वेदी की रक्षा होती है। दैत्यों को शांत किया जाता है। आज हमें भगवान राम बनने की आवश्यकता है।

मुनिवरो हम भगवान राम तब तक नहीं बनेंगे जब तक हमारे द्वारा चरित्र न होगा। जब तक हमारे द्वारा गुरु परम्परा न होगी। हमारी परम्परा क्या है ? वह है यज्ञ वेदी जिसमें वर्ण व्यवस्था का विधान बनाया जाता है। जिसमें मानव के कल्याण का विधान बनाया जाता है। यह वह यज्ञ वेदी है। इसकी रक्षा करना प्रत्येक मानव और प्रत्येक देव कन्या का कर्तव्य है। उसके लिए अपने जीवन को न्यौछावर कर देना है।

आज हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा था ? आज हमारी यज्ञ वेदी हमें क्या-क्या पुकार करके कह रही है ? आज पुनः से हमें उस क्षेत्र में जाना है जो वास्तविक है। आज मुझे सौभाग्य मिल रहा है कि इस शुभ अवसर पर

यज्ञ वेदी की प्रशंसा करने आया हूं। महानन्द जी से मुझे यज्ञ की प्रेरणा मिल रही है। उनकी प्रेरणा के आधार से आज मैं यज्ञ वेदी की प्रशंसा करने जा रहा हूं।

मुनिवरो! यह वह यज्ञ वेदी है जहां ब्रह्मा विराजमान हो करके यजमान को, होताओं को देखता है कि यह शूद्र तो नहीं है। यह होता है ब्राह्मण है और यह वैश्य है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे निर्णय कराया था कि आज तुम्हें यज्ञ वेदी पर जाना है। सदाचार और विज्ञान को अपनाना है। जिस विज्ञान से तू मानव कौ जान सके कि यह कौन से वर्ण का है। ये मेरी प्यारी माता कौन से वर्ण में जाने योग्य है। आज तू यज्ञ वेदी पर ब्रह्मा तो वनने जा रहा है परन्तु सबसे पूर्व तुझे यह विचारना है कि यह कौन है जो तेरी यज्ञ वेदी पर विराजमान है शूद्र है, क्षत्रिय है या वैश्य है।

मुनिवरो! देखो यहां शूद्र कौन कहा जाता है? मुझे आज से बहुत पूर्व काल में ऋषियों ने विशेष कर मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रेरणा दी थी कि शूद्र वह होता है जो दूसरे व्यक्तियों की रक्षा नहीं करता, दूसरे जीवों का भक्षण कर जाता है। सदाचारी क्षत्रिय, वैश्य वह होता है जो दूसरों की रक्षा करता है। प्राणीमात्र की रक्षा करता है। वह यज्ञवेदी पर आने योग्य है। आज वह यज्ञ वेदी परआने योग्य नहीं जो अपनी रसना के आनन्द में सब धर्म कर्म त्याग बैठा है।

हे मानव! यदि पापी बन करके यज्ञ वेदी पर आएगा तो वह यज्ञ वेदी तुझे ऐसे भस्म कर देगी जैसे अग्नि ईन्धन को भस्म कर देती। ऐसे ही तेरे पाप मूल बन जायेंगे। आज तुझे यज्ञ वेदी पर आना है तो सदाचार को अपना कर आ। तू संकल्प धारण करके आ कि मैं आज प्रतिज्ञा करने जा रहा हूं कि मैं दूसरे जीवों का भक्षण नहीं करूंगा। जो अपने उदर की पूर्ति के लिए दूसरे जीवों का भक्षण करता है वह मानव नहीं कहा जाता। वह संसार में दुराचारी और शूद्र कहा जाता है। क्षत्रीय और वैश्य वह होता है जो अपने राष्ट्र के लिए, यज्ञ वेदी के लिए अपने जीवन को न्यौछावर करने वाला हो। वह संसार में सदाचारी कहलाता है। मुनिवरों हमें सदाचारी बन करके ब्रह्मा

के समीप आ जाना है जो ब्रह्मा ऊंचा आदेश देकर नियमों के अनुकूल कार्य से प्रेरित करता है।

हे ब्रह्मा ! तू वास्तविक ब्रह्मा है। तू यज्ञ वेदी पर आ करके विधान बनाने वाला है। आज तू पुनः से यज्ञ वेदी पर आ करके नियम बना जो वास्तविक नियम हैं। महाराजा रघु के यहां यज्ञ हुआ। सब ब्राह्मण आये। ऋषि मुनियों को चुनौती दी और उन ऋषि मुनियों को ब्रह्मा की उपाधि प्राप्त कराई गई जो यह जानते थे कि जो यज्ञ वेदी पर यजमान, होता अध्वर्यु और उद्गाता चुना है वह कैसा है ? वह किस भाव का है ? कैसा इनका चरित्र है ? यह सब कुछ योगी लोग जान लेते हैं। आज तुझे अपने जीवन को ऊंचा बनाने के लिए और दूसरों के जीवन को जानने के लिए तुझे अपने मनोविज्ञान को जानना है। आज तुझे उस मस्तिष्क विज्ञान को जानना है जो हमारा आयुर्वेद कह रहा है। हमारी संहिता पुकारकर कह रही है। हमारा वेद मन्त्र पुकार रहा है। तुझे वेद के प्रत्येक मन्त्र पर विचार करना है और उसको अपनाना है। वह तेरा गहना है। हे ब्रह्मा तेरा गहना क्या है ? तेरा गहना यज्ञ वेदी है। तेरा गहना वेद है। तेरा गहना है प्रकाश। तू मानव को ऊंचा बना सकता है। तू यज्ञ वेदी पर वह आदेश दे सकता है कि मानव यहां से उठकर सूर्य मण्डल, चन्द्र मण्डल, बृहस्पति मण्डल, ध्रुव मण्डल और अरुणी मण्डल तक पहुंच सकता है। आज तुझे पुनः से विचार लगाकर चलना है। तू आज उस यज्ञ वेदी पर आया है जो वेदी परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न की थी। आज सदाचार को अपनाना है। वीरता को अपनाना है। अपने उस ब्रह्मचर्य को अपनाना है जिस ब्रह्मचर्य से मानव ब्रह्म में विचरण करता है। वह यज्ञवेदी उसे अपनी गोद में धारण कर लेती है और गोद में धारण कर परमपिता परमात्मा से मिलान करा देती है। मुनिवरों देखो ! आज प्रत्येक मानव उस यज्ञवेदी पर आया है। आज हमें पुनः से विचारना है कि हमें उस यज्ञवेदी की रक्षा करनी है।

मुझे आज से पूर्व महानन्द जी ने कहा था कि आज का संसार यज्ञ वेदी से दूर जा रहा है। हे मानव ! तुझे यज्ञ वेदी से दूर नहीं जाना है। तुझे यज्ञ वेदी पर आना है। तू भौतिक यज्ञ वेदी से तो दूर भाग रहा है परन्तु हम तो तब जानेंगे जब तू परमात्मा की उत्पन्न की हुई यज्ञ वेदी से बाहर चला जाएगा।

आज परमात्मा ने संसार रूपी यज्ञ वेदी को रचा है। इसका ब्रह्मा भी स्वयं बना है। यजमान आत्मा बना है। उद्गाता और अध्वर्यु सूर्य और चन्द्रमा हैं। आज मानव ! तू कहां है ? आज तुझे इस यज्ञ वेदी से बाहर जाने का कोई अवसर न मिलेगा।

हे मानव ! तू आज अपने सदाचार को अपना कर स्वयं यज्ञ वेदी पर आ जा। इस अग्नि को हमारे ऋषि मुनियों ने प्रज्वलित किया है। यह अग्नि हमें प्रकाश देती है। यज्ञशाला में विराजमान हो करके हमें प्रेरित करती है कि हे मानव ! जैसे मैने इस नाना घृत और सामग्री को भस्म किया है इसी प्रकार तू भी अपने अवगुणों को भस्म करके तू भी संसार में वास्तविक बन। आज तू भी वह अग्नि बन कि जो भी तेरे द्वारा आ जाये उसके पाप समाप्त हो जाएं।

आज तू संसार के ऐश्वर्य की कल्पना करता है। आज तू नाना प्रकार के आसन की आज्ञा कर रहा है परन्तु यह आसन न तेरे आदि में है और न अन्त में है। आज तू उस संकल्प को धारण कर जो तेरे आदि और अन्त दोनों में हो। वह तेरा वास्तविक आसन क्या है ? वह है यज्ञ वेदी। हे मानव ! तू इस यज्ञ वेदी पर पहुंच जिस वेदी पर पहुंच कर इन नाना प्रकार के अवगुणों को ईन्धन की तरह ज्ञान अग्नि में भस्म कर देगा। तू उस कल्याणकारी मार्ग में पहुंच जाएगा जो तेरा वास्तविक मार्ग है। जिस मार्ग पर जाने से तेरा वास्तविक कल्याण होगा। जब हमारा आत्मिक बल ऊंचा न होगा, मानवता हमारे द्वारा न होगी, ज्ञान अग्नि हमारे द्वारा न होगी, यज्ञ अग्नि प्रज्वलित करने की सत्ता हमारे द्वारा न होगी और वर्ण व्यवस्था स्थापित करने की सत्ता न होगी तब तक हम मानव नहीं कहलाएंगे। न हम ब्रह्मा हैं और न हम ऋषि हैं न हम आत्मज्ञानी। आत्मज्ञानी संसार में वह होता है जिसको संसार का पूर्ण ज्ञान होता है। आज संसार में आत्मज्ञानी बनना है। आज हमें भौतिकवाद के मार्ग पर नहीं जाना है। हमें उस मार्ग को अपनाना है जिससे मानव का कल्याण हो। जिस मार्ग को अपना कर यहां से हमारे ऋषि मुनि चले गए हैं। उस मार्ग को पुनः से अपनाना है।

मुनिवरो ! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने जिस समय प्राणों को त्यागा था तब वे यज्ञ वेदी पर विराजमान थे। उनका हृदय मग्न हो रहा था। मुग्ध होते

हुए अपने प्राणों को त्यागा था। हृदय मुग्ध वाले मनुष्य यहां से जाकर सूर्य लोकों तक पहुंच जाते हैं और वहां भी अपने उसी कर्तव्य का पालन करते हैं जो वे यहां करते थे। त्याग तपस्या से अपने जीवन को ऊंचा बनाते हैं। ज्ञान रूपी अग्नि को प्रज्वलित करते हैं उन कन्दराओं में जिनमें अन्धकार होता है।

आज हमारा जो यह शरीर है यह अन्धकार रूपी गुफा है। इस गुफा में वह अग्नि प्रज्वलित करनी है जिससे यह गुफा न रहे परन्तु ऊंचा सुहावना गृह बन जाये, जहां हमें आनन्द प्राप्त हो। इसमें ज्ञान रूपी अग्नि को प्रज्वलित करना है और वेदों को अपनाना है। वेद रूपी प्रकाश से हमारा वास्तव में कल्याण होगा।

आज हम दूसरों को तब ही ऊंचा बना सकते हैं जब हमारे द्वारा चरित्र होगा। हमारे द्वारा मानवता होगी। हमारे द्वारा ज्ञान रूपी अग्नि होगी। अन्यथा मेरे जैसे यहां नाना उच्चारण करके चले गये हैं परन्तु यह संसार उसी स्थान पर रहा जहां रहता चला आया है।

आज मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी से संकेत मिला है कि आधुनिक संसार किस मार्ग पर जा रहा है! यहां न वर्ण व्यवस्था है न मानवता है। आज दूसरे जीवों का भक्षण करके अपने उदर की पूर्ति करता चला जा रहा है। आज इस मार्ग को नहीं अपनाना है।

हे मानव! यदि तू परमात्मा की सृष्टि में आया है तो परमात्मा के अनुकूल कार्य कर। परमात्मा तुझे जो प्रेरणा देता है उसके आधार से चल अन्यथा अपने जीवन को शान्त कर दे और परमात्मा की सृष्टि में न आ। ऊंचा बनने के लिए परमात्मा ने तुझे सब कुछ सामग्री दी है। आज तू दूसरे जीवों का भक्षण करने वाला क्यों बन रहा है। तू रक्षा करने वाला बन। आज वह रक्षा कर कि सिंह तक तेरे चरणों में आ जाएं। आज वह रक्षा कर कि जिन जीवों का तू भक्षण करता है वह तेरी रक्षा के लिए स्वयं उद्यम हो जाएं। जिसकी तू रक्षा करेगा वह स्वयं तेरी रक्षा करेगा। संसार में जो गौ की रक्षा करता है गौ उसे दुग्ध देती है। आज जो भी जिसकी रक्षा करता है वह स्वयं ही उसका साथी बन जाता है और साथी बन करके हर

समय उसके कल्याण की सोचता रहता है। हे मानव ! तुझे अहिंसावादी बनना है।

एक समय भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ से कहा, "महाराज ! संसार में वास्तविक यज्ञ वेदी क्या है ?" उन्होंने कहा कि संसार में वास्तविक यज्ञ वेदी तो यज्ञ करना है। भौतिक यज्ञ करना है उसके पश्चात् आत्मिक यज्ञ करना है। यज्ञ वेदी को अपनाना हमारा कर्तव्य है। हे राम ! आज तुम्हें यज्ञ वेदी को अपना कर चलना है। तुम्हें अपने सदाचार को अपनाना है और संसार को सदाचारी बना देना है। 'अहिंसा परमोधर्मः' की वेदी पर आ जाना है जहां हिंसक व्यक्ति कोई न हो। इससे तुम्हारे राष्ट्र का कल्याण होगा। तुम्हारी यज्ञ वेदी की रक्षा होगी, तुम्हारी माता की रक्षा होगी, तुम्हारी संस्कृति की रक्षा होगी।

आज मुझे जब यह वाक्य कंठ आते हैं तो हृदय गद्-गद् हो जाता है। हृदय कुछ का कुछ पुकारने लगता है। आज मुझे वेद का एक-एक अक्षर पुकार रहा है कि हे मानव ! तू यज्ञ को अपना। सदाचारी बन करके यज्ञ पर आ। मेरी प्यारी माता ! तू भी सदाचारी बन करके यज्ञ में आ। तू संसार को ऊंचा बनाने वाली है। जब तेरा सदाचार ऊंचा होगा तो तेरे गर्भ से वह बालक उत्पन्न हो सकते हैं जो वर्ण व्यवस्था को ऊंचा बना सकते हैं। हे माता ! यदि तेरी यज्ञ वेदी शान्त हो गई तो तू उस प्यारे पुत्र को कदापि न उत्पन्न कर सकेगी जो आज संसार का कल्याण कर दे। दूसरों की रक्षा करने वाला बालक तेरे गर्भ से उस काल में उत्पन्न होगा जब तू सात्विकता को धारण करेगी। हे माता ! आज तू गंगोत्री बन जो भीष्म पितामह जैसे गर्भ से उत्पन्न हों। आज तू वास्तविक बन। जैमिनी जैसे को उत्पन्न कर। आज तू इस यज्ञ वेदी पर आ। यहां तेरे गर्भ से नाना भगवान कृष्ण जैसे पैदा हों। माता ! तू क्यों नहीं आती है ? हे माता ! तू उस वेदी पर आ और भगवान से प्रार्थना कर। तू उस प्रभु की गोद में चल जिसमें जाने से तेरा गर्भ संसार में ऊंचा बनेगा। तू संसार की माता कहलाएगी।

आज तू वह माता क्यों नहीं बन रही है ? आज तू अरुणी बन, माता अहिल्या बन जो संसार का कल्याण करने वाली माता थी। आज तू माता पार्वती बन जो गणेश जैसे पुत्र को उत्पन्न करने वाली हो, स्वामी कार्तिक को

उत्पन्न करने वाली हो। माता! तू कहां है? कौन से स्थल में जा पहुंची है? कौन से अन्धकार रूपी गुफा में जा पहुंची है जहां तू अपनी ज्ञान रूपी अग्नि को शान्त कर बैठी है।

मुनिवरो! आज प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को उस यज्ञ वेदी पर आ जाना है जिस पर आ जाने से मानव-कल्याण होता है। यज्ञ वेदी से वर्ण व्यवस्था बनती है। ब्रह्मा जानता है कि यह शूद्र है यह हमारी रक्षा नहीं कर सकता है, सेवा कराओ। क्षत्रिय से कहो कि तू यज्ञ की रक्षा कर यह तेरा कर्तव्य है। वैश्य से कहो कि तू द्रव्य दे जिस द्रव्य से यह राष्ट्र यह लोक और परलोक तेरा ऊंचा बने। मानव! आज तू यज्ञ में अवश्य कुछ न कुछ दे। आज तू वह पदार्थ दे वह हवि दे जिसको पान करके देवता कल्याण के लिए तुझे प्रेरणा दें। 'अहिंसा परमोधर्मः' वाली वेदी पर तुझे प्रेरित करें।

आज यदि तू हिंसक बन गया तो हे मानव! तेरा मानव जीवन व्यर्थ हो गया। तू कुछ न रहा। एक पशु के तुल्य बन गया। तू मार्ग में विचरने वाला एक सिंह बन गया है। हे मानव! आज तुझे ऊंचा व्यक्ति बनना है कि सिंह तक तेरे चरणों में ओत-प्रोत हो जाएं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जिस समय कजली वन में वेद पाठ किया करते थे तो मैं देखा करता था कि उस समय नाना सिंह आ करके उस वेद वाणी को पान किया करते थे। उस समय वृक्षों पर पक्षी भी शान्त हो जाते थे उस मेरे गुरुदेव की वाणी को पान करने के लिए। हिंसकों का आत्मा भी उस वाणी को पान करके पुकारता था हे प्राणी तू हिंसक न बन। तू हिंसक बनेगा तो तेरा कल्याण न होगा। तू अहिंसा सदाचार और चरित्र को अपनाकर यज्ञ वेदी पर आयेगा तो तेरा वास्तव में कल्याण होगा। तू अपने राष्ट्र को भी ऊंचा बना सकेगा। अपने धर्म की भी रक्षा कर सकेगा। आज तू पुनः से यज्ञ वेदी पर आ।

हे मानव आज तुझे अपनी मानवता की रक्षा करने के लिए, अपना पुनः कल्याण करने के लिए आज तुझे उस आंगन में आ जाना है जहां आकर ऋषि मुनि अपने कल्याण के लिए प्रभु से याचना किया करते हैं। तू उस वेदी पर आ, प्रभु के आंगन में आ और नम्रता से चल। प्रभु के आंगन में जाने के

उत्पन्न करने वाली हो। माता! तू कहां है? कौन से स्थल में जा पहुंची है? कौन से अन्धकार रूपी गुफा में जा पहुंची है जहां तू अपनी ज्ञान रूपी अग्नि को शान्त कर बैठी है।

मुनिवरो! आज प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को उस यज्ञ वेदी पर आ जाना है जिस पर आ जाने से मानव-कल्याण होता है। यज्ञ वेदी से वर्ण व्यवस्था बनती है। ब्रह्मा जानता है कि यह शूद्र है यह हमारी रक्षा नहीं कर सकता है, सेवा कराओ। क्षत्रिय से कहो कि तू यज्ञ की रक्षा कर यह तेरा कर्तव्य है। वैश्य से कहो कि तू द्रव्य दे जिस द्रव्य से यह राष्ट्र यह लोक और परलोक तेरा ऊंचा बने। मानव! आज तू यज्ञ में अवश्य कुछ न कुछ दे। आज तू वह पदार्थ दे वह हवि दे जिसको पान करके देवता कल्याण के लिए तुझे प्रेरणा दें। 'अहिंसा परमोधर्मः' वाली वेदी पर तुझे प्रेरित करें।

आज यदि तू हिंसक बन गया तो हे मानव! तेरा मानव जीवन व्यर्थ हो गया। तू कुछ न रहा। एक पशु के तुल्य बन गया। तू मार्ग में विचरने वाला एक सिंह बन गया है। हे मानव! आज तुझे ऊंचा व्यक्ति बनना है कि सिंह तक तेरे चरणों में ओत-प्रोत हो जाएं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जिस समय कजली वन में वेद पाठ किया करते थे तो मैं देखा करता था कि उस समय नाना सिंह आ करके उस वेद वाणी को पान किया करते थे। उस समय वृक्षों पर पक्षी भी शान्त हो जाते थे उस मेरे गुरुदेव की वाणी को पान करने के लिए। हिंसकों का आत्मा भी उस वाणी को पान करके पुकारता था हे प्राणी तू हिंसक न बन। तू हिंसक बनेगा तो तेरा कल्याण न होगा। तू अहिंसा सदाचार और चरित्र को अपनाकर यज्ञ वेदी पर आयेगा तो तेरा वास्तव में कल्याण होगा। तू अपने राष्ट्र को भी ऊंचा बना सकेगा। अपने धर्म की भी रक्षा कर सकेगा। आज तू पुनः से यज्ञ वेदी पर आ।

हे मानव आज तुझे अपनी मानवता की रक्षा करने के लिए, अपना पुनः कल्याण करने के लिए आज तुझे उस आंगन में आ जाना है जहां आकर ऋषि मुनि अपने कल्याण के लिए प्रभु से याचना किया करते हैं। तू उस वेदी पर आ, प्रभु के आंगन में आ और नम्रता से चल। प्रभु के आंगन में जाने के

लिए, ज्ञानी बनने के लिए, याचक बनने के लिए, यज्ञशाला में जाने के लिए तू आज नेत्रों से देख कि यह क्या है। यह वह भूमि है जहां हमारे बड़े-बड़े महर्षियों ने याज्ञवल्क्य ने, और देवताओं ने यज्ञ किया। माता गार्गी जैसी यहां यज्ञ वेदी की रक्षा करने वाली तथा परम्परा को ऊंचा बनाने वाली माता कहलाती हैं। क्योंकि उन्होंने अपने धर्म की प्रतिज्ञाओं को धारण किया। जो संकल्पवादी होता है वह संसार में ऊंचा होता है। आज हमें संकल्पवादी बनना है।

मेरे प्यारे महानन्द जी जब कुछ वाक्य उच्चारण करते हैं तो इनका वाक्य बहुत ऊंचा होता है। आज मुझे इनके वाक्यों का समर्थन नहीं करना है। मुझे तो आज केवल यह उच्चारण करना है कि आज हमें यज्ञ की रक्षा करनी है। आज शान्त अग्नि को प्रज्वलित करना है और ईंधन देकर अग्नि की ज्योति को ऊंचा बनाना है जिस ज्योति से हम लोक-लोकान्तरों तक रमण करने वाले बन जाते हैं। आज मुनिवरो! हमें उस यज्ञ वेदी पर पहुंचना है जिस वेदी पर जाकर मानव का वास्तविक कल्याण हो जाता है और मानव अनुभव करता है कि तू वास्तविक वेदी पर आ पहुंचा है।

हे मेरे प्यारे मानव! हे मेरे प्यारे ऋषि मंडल। आओ! हम प्रभु का गुण-गान गायें। प्रभु ने हमारे जीवन को बनाया है। आज हम प्रभु का गुण-गान गाते चले जाएं। हे मेरे प्यारे मानव! अपनी मूर्खताओं पर विचार करते चले जाओ। पश्चाताप करते चले जाओ। आज परमात्मा ने तुम्हारे कल्याण के लिए नाना सामग्रियां दी है। परन्तु तब भी पापाचार में लगे जा रहे हो। आज आओ और अपने कर्तव्यों पर पश्चाताप कर। मानव तू यज्ञ वेदी पर आ करके अपने उन तुच्छ कर्मों पर पश्चाताप कर और उस प्रभु के आंगन के लिए तू प्रेरित हो और उस प्रभु से प्रार्थना कर। जब तू उसके योग्य बन जाएगा तो प्रभु तुझे स्वयं अपनी गोद में धारण कर लेंगे। ये तुझे ऐसा निर्मल और पवित्र बना देंगे कि तू इस आवागमन से दूर हो जाएगा। तुझे दुःख सागर में नहीं डूबना पड़ेगा। इस समुद्र सागर से पार हो जाओगे।

हे मानव तू महान बन। जब निर्मल और स्वच्छ बन जाएगा तो तेरे द्वारा जो नाना प्रकार के अवगुण हैं वह ज्ञानरूपी अग्नि में भस्म हो जाएंगे

और उसके पश्चात उस महान स्थान को चला जाएगा जिस स्थान में जाने से तेरा कल्याण होगा।

हे प्रभु ! तू कल्याण करने वाला है। आज तू हमें क्यों प्रेरित नहीं कर रहा है। हम भी तो तेरी सृष्टि में आए हैं। यह संसार भी तो आपका बनाया हुआ है। भगवन् ! आपने इन दुराचार और इन पाप कर्मों को क्यों रचाया ? आज प्रभु ! इनको न रचाते तो हम संसार में पापी न बनते। प्रभु आज हम पापी हैं। हमें अपने कंठ से लगा। आज हमें प्रेरणा देकर उन पाप भावनाओं को समाप्त करा। प्रभु ! हम ज्ञान अग्नि में इन्हें भस्म करना चाहते हैं। विधाता ! हम तेरी शरण के लिए महत्ता चाहते हैं । प्रभु ! तेरी सहायता चाहते हैं। हमें वह सहायता दे जिससे हम ब्रह्मा के समीप जाएं, हम यज्ञशाला में जाएं। अग्नि प्रज्वलित करें और देवताओं को हवि दें। देवता उसे पाकर प्रेरणा देंगे जिन प्रेरणाओं को पाकर प्रभु ! हम तेरी गोद में जाएंगे। हे कल्याणकारी प्रभु ! तू कहां है ? आज हमारे कल्याण के लिए योजना बना। हम तेरी संसार रूपी यज्ञ वेदी पर आए हैं। हमें प्रेरणा दे। हमें महान् बना। हम वास्तविक ब्रह्मा बनें, योगी बनें। आज विधाता हम अपना ही कल्यग्ण नहीं चाहते हम संसार का कल्याण चाहते हैं।

आज यह वेद हमें क्या पुकार रहा है ? वेद कहता चला जा रहा है हे मानव ! तू मानव बन। दूसरों का भक्षण न कर। अहिंसावादी बन। हिंसक बनेगा तो तेरा अनिष्ट हो जाएगा। आज यदि तू अहिंसावादी बनकर सदाचार को अपनाएगा तो सूर्य जैसा तेरा प्रकाश होगा। संसार में जो भी त्यागी तपस्वी रहा है परमात्मा की आज्ञाओं का पालन करता है वह संसार में ऊंचा कहलाया है।

आज प्रत्येक मानव को प्रत्येक देवकन्या को ऊंचा बनना है। ऊंचा बनने के लिए वेद रूपी प्रकाश को अपनाना है। यज्ञ वेदी पर जा करके कल्याण करना है। आज का हमारा आदेश यज्ञ के लिए प्रेरित कर रहा था। आज मानव को सदाचारी बनने के लिए कह रहा था। प्रभु के द्वारा जाने के लिए प्रेरित कर रहा था।

मुनिवरो! आज मानव को ऊंचा बनने का सबसे अच्छा साधन क्या है ?

सबसे अच्छा साधन है यज्ञ। सबसे ऊंचा साधन है ब्रह्माओं के द्वारा जाना। ऋषि मुनियों के द्वारा जाकर अपने नाना कष्टों का निवारण करो। अपने आत्म-कल्याण के लिए उनसे कहो कि हमें आत्मा का आदेश दें।

आज तू वास्तव में आत्मा का आदेश चाहता है तो तू रसना के उस आनन्द को त्याग जिसका आदि और अन्त नहीं। आज तुझे रसना के वास्तविक आनन्द को लाना है। जिस रसना पर 'ओ३म्' का आनन्द आ गया तो मानो! वाणी पवित्र बन गई। यह वाणी आत्मा के द्वारा जाएगी तो तेरा अन्तःकरण पवित्र बन जाएगा। आज तू इस रसना के आनन्द में दूसरे जीवों को भक्षण कर रहा है। इस वाणी के द्वारा 'ओ३म्' में क्यों नहीं विचरता। आज तू इस वाणी में 'ओ३म्' को बसा ले। जब 'ओ३म्' तेरी वाणी में स्थान कर जाएगा तो तेरी वाणी व अन्तःकरण पवित्र हो जाएगा। मल विक्षेप आवरण शान्त हो जायेंगे। तेरी आत्मा की पुकार तेरे द्वारा आ करके परमात्मा से मिलान करा देगी।

——

संध्या क्या है ?

(२० अक्तूबर १९६३ (दुर्गा अष्टमी) प्रातः ७ बजे
भारत सेवक समाज, सरोजनी नगर, नई दिल्ली)

देखो मुनिवरो ! अभी-अभी हमारा(वेद) पर्यायण समय समाप्त हुआ। आज हम तुम्हारे समक्ष पुनः की भांति कुछ वेद मन्त्रों का गान गा रहे थे। आज कैसा सुहावना समय है। जिस सुन्दर समय में परमपिता परमात्मा ने हमें इन वेद मन्त्रों के उच्चारण करने का सुअवसर दिया। आज इस अमृत बेला में उस गान को गायें जिससे हम देवता बन जाएं। मुनिवरो ! देवता जन प्रातःकाल में कैसे अमृत को पान किया करते हैं।

आज आरम्भ के मन्त्र में ही 'प्रातरग्नि' आ रहा था। हे प्रातःकाल की अग्नि ! तू हवि है। तू हव्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाली है। तू हमें हव्य पदार्थों का पान करा ज़िससे हम देवता बन जाएं और देवता-गणों के समाज में विराजमान होकर देव वाणियों को कुछ विचारें। हमारी विचारधाराएं हर स्थान में देव वृत्ति ही बनी रहें।

प्रायः मानव कहते हैं, मेरे प्यारे महानन्द जी भी कहा करते हैं कि देवता जन कौन से वाक्यों को विचारा करते हैं ? मुनिवरो ! वह हर समय दूसरों के कल्याण के लिए ही विचारा करते हैं। वह हर समय दूसरों को कुछ देते हैं। वे अपनी त्रुटियों को देखकर दूसरों के गुणों को धारण करते हैं। संसार में दूसरों के कल्याण की भावना जिनके हृदय में रहती है, वे देवता कहलाते हैं। वे दूसरों की निन्दा नहीं करते। जो दूसरों की निन्दा करते हैं उन्हें देवता नहीं कहते। आत्मा की व्याहृतियों को जानने वाले को देवता कहते हैं।

मुनिवरो ! आज हमें यह प्रातःकाल का ऊंचा समय बहुत समय के पश्चात् मिला। आज इस ऊंचे समय में कुछ सन्ध्या का प्रश्न करते चले जायें। इस प्रातःकाल में प्रभु का गुणगान गाएं। हे परमात्मन् ! तू कल्याण

करने वाला है। हमारे कल्याण के लिए नाना सामग्री उत्पन्न की है। हे प्रभु! हम आपसे कल्याण चाहते हैं।

हे इन्द्र ! इस संसार को नियम से बनाने वाले ! हमारे जीवन को भी नियमित बना। जब हमारा जीवन नियमित होगा तो हम सब ही कुछ कार्य कर सकेंगे। आपने प्रातः काल में सूर्य को उत्पन्न किया है इसी प्रकार हे देव ! हम उस महान ज्योति को चाहते हैं जिससे हमारा आत्मिक कल्याण हो। वह कौन-सी ज्योति है ?

मुनिवरो ! वह ज्योति हमारी सन्ध्या की व्याहृतियां हैं। जब सन्ध्या की व्याहृतियों को जाना जाता है तो वह सन्ध्या वास्तव में हमारा कल्याण करा देती है। जब देवता सन्ध्या के द्वार पर जाते हैं तो सन्ध्या पुकार कर कहती है कि हे देवताओं तुम यदि मेरा आदर करोगे, अनुकरण करोगे तो तुम संसार में देवता बन जाओगे यदि तुम मुझे ठुकराओगे तो तुम संसार में ठुकराए जाओगे।

मुनिवरो ! कहते हैं कि एक समय ब्रह्मा भी देवताओं के द्वार पहुंचे। ब्रह्मा के चरणों को स्पर्श करते हुए देवताओं ने कहा कि भगवन ! हमारे कल्याण के लिए कोई मार्ग निर्णय कीजिए। उस समय ब्रह्मा जी बोले, "अरे देवताओं ! आज तुम कौन से वाक्य से देवता बने हो, इसका मुझे कुछ प्रकाश दो।"

उस समय देवताओं ने कहा, "हे भगवन ! हम किसी का आदर करके और अनुकरण करके देवता बने हैं।"

तब ब्रह्मा ने कहा, "तुम किसका आदर करते हो ?"

उन्होंने कहा कि हम तो संध्या का आदर करते हैं। हम दुर्गा का आदर करते हैं।

उस समय ब्रह्मा जी बोले, "ओ देवताओं ! तुम कल्याण का और क्या मार्ग चाहते हो।"

मुनिवरो देखो ! उस समय देवताओं ने कहा, "प्रभु हमें आपके मुखारविन्द की भी तो आवश्यकता है। जो आप अपने मुखारविन्द से कहेंगे वह हमारे लिए अमृत बन जाएगा।"

कहते हैं मुनिवरो ! उस समय ब्रह्मा जी ने अपने मुख से इस सन्ध्या को उत्पन्न किया और कहा कि हे देवताओं ! यह जो सन्ध्या मैंने तुम्हारे लिए उत्पन्न की है इसका अनुकरण करो। यह सन्ध्या तुम्हें और भी देवता बना देगी। आज तुम दूसरों का आदरकरके तो देवता बने हो परन्तु इस सन्ध्या को जो मेरे मुखारविन्द से उत्पन्न हुई है इसका अनुकरण करो।

तो मुनिवरो ! कहते हैं कि सन्ध्या ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुई, जिसके अनुकरण से ऋषि बन जाते हैं। जिससे देवता बन जाते हैं। मेरी माताएं दुर्गा बन जाती है, मां काली बन जाती हैं। जिससे अपने जीवन को ऊंचा बना लेते हैं। आज हमें सन्ध्या की गोद में जाना है।

आज मानव कहते हैं कि ब्रह्मा ने इसे कैसे उत्पन्न किया ? जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो उससे पूर्व आत्मा उस प्रभु से अनुरोध करता है कि प्रभु कर्म करने के लिए सृष्टि उत्पन्न करो। सृष्टि उत्पन्न होने के पश्चात् मुनिवरो ! ऐसा कहते हैं कि देवताओं ने यह याचना की कि विधाता ! यह हमारे कर्म करने का क्षेत्र तो बनाया परन्तु हमें देवता बनने का और भी कुछ प्रयत्न कीजिए। कहते हैं मुनिवरो. ब्रह्मा ने अपने मुखारविन्द से सन्ध्या को उत्पन्न किया। मुनिवरो देखो सन्ध्या प्रकाश देती आई है और संसार को और भी प्रकाशमान बना दिया। जैसे मुनिवरो ! आज सूक्ष्म सा प्रकाश हो रहा है और यदि सूर्य का प्रकाश आ जाए तो यह प्रकाश शांत हो जाता है। वह प्रकाश फीका पड़ जाता है। इसी प्रकार विधाता ने यह सूक्ष्म-सा प्रकाश तो संसार को दिया परन्तु एक सूर्य जैसा प्रकाश सन्ध्या का आया। सन्ध्या के आते ही सबने उसको अपने में धारण करना प्रारम्भ कर दिया। उसका अनुसरण किया। तो कहते हैं बेटा ! वहां और भी प्रकाश हो गया संसार में। आत्मा के द्वारा जो मल, विक्षेप, आवरण थे वह भी सब शांत होने लगे। वह इस प्रकार शांत हो गए जैसे सूर्य उदय होने पर रात्रि की प्रभा शान्त हो जाती है। इसी प्रकार मुनिवरो सन्ध्या के अनुकरण से मनुष्य का हृदय निर्मल

और स्वच्छ बन जाया है जिस मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ बन गया उसका वास्तव में कल्याण हो गया।

तो मुनिवरो ! आज हमें अपना कल्याण करना है और विचारना है कि कल्याण के लिए सबसे मुख्य वार्ता क्या है ? मेरे प्यारे महानन्द जी ने निर्णय कराया कि इस समय संसार में प्रत्येक स्थान में मां दुर्गा का पूजन हो रहा है। मां दुर्गा क्या है ? मां दुर्गा भी वह सन्ध्या है।

मां दुर्गा वास्तव में कल्याण करने वाली है। आज के वेद-पाठ में कई स्थानों में मां दुर्गा का प्रकरण आ रहा था। हे माता दुर्गे तुझे अष्ट भुजाओं वाली कहा जाता है। तू वास्तव में अष्ट भुजाओं वाली है। जब तू आठ भुजाओं को लेकर संसार में आती है तो यह संसार प्रकाश मान हो जाता है। सिंह तेरा वाहन है। तू सिंह रूपी वाहन पर सवार होकर आ, और आ करके दैत्यों को शांत कर और देवताओं की रक्षा कर। माता दुर्गे ! तू वास्तव में कल्याण करने वाली है। तू वास्तव में हमारे जीवन को, हमारे हृदय को उदार बनाने वाली है। मल विक्षेप आवरण को शांत करने वाली है और आत्मा निर्मल और स्वच्छ बना देती है।

मुनिवरो देखो ! अष्ट भुजाओं वाली दुर्गा कौन है ? जिसके अष्ट भुजाएं हैं। दुर्गा नाम है बेटा विद्या का।

मुनिवरो देखो ! विद्या किसी के आधार पर आती है। विद्या का जो वाहन है वह भी विचित्र है। वह कौन है ? वह देखो सिंहनाद है जिसके आधार से विद्या आती है। यह अष्ट भुजाओं वाली विद्या अष्ट भुजाओं वाली दुर्गा कौन है ?

मुनिवरो देखो ! जब मनुष्य ज्ञान के मार्ग में जाता है तो विद्या को पान करने वाला बन जाता है। उस समय यह दुर्गा, यह विद्या इस सब ब्रह्माण्ड का जिसमें आठ दिशायें हैं उनका ज्ञान करा देती है। उसके ज्ञान और विज्ञान को जान जाता है कि पूर्व में क्या है ? पश्चिम में क्या है ? उत्तरायण में क्या है ? दक्षिणायन में क्या है ? उन दोनों के माध्यम में क्या

है आठों दिशाओं को जानने वाला जिज्ञासु मुनिवरो देखो ! दुर्गा का अनुकरण करता है ।

दुर्गा माता की पूजा कैसे की जाती है ?

दुर्गा माता की पूजा मनुष्य उस काल में कर सकता है जब उसके द्वारा ज्ञान होता है, विद्या होती है, सिंहनाद होता है । सिंहनाद कौन-सा है ?

मुनिवरो देखो ! जिससे अपराधियों को कुचला जाता है । अज्ञान रूपी पशुओं को शांत किया जाता है । हृदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है । तो मुनिवरो मां दुर्गे भी सन्ध्या है ।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक वार्ता प्रकट की कि गंगा में एक प्रवाह आता है और उस पर्व में जो गंगा की अमृतधारा को पान करता है वह वास्तव में अमर हो जाता है । वह निर्मल और स्वच्छ बन जाता है ! वह देवता बन जाता है । वह उस गंगा की दुग्ध तुल्य धारा को पान करके संसार से पार हो जाता है ।

वह कौन से पर्व का स्थान है जिसके करने से मानव का कल्याण होता है ? जिस पर्व में स्नान करने से आत्मा के मल विक्षेप आवरण शान्त हो जाते है। वह कौन-सा निर्मल स्वच्छ जल है ?

मुनिवरो ! आज हम विचारते नहीं । प्रातःकाल के पूर्व में हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ कैसे बन सकता है ? प्रातःकाल की गंगा में स्नान से बन सकता है । माता दुर्गा (विद्या) की पूजा से बन सकता है । आज उस सन्ध्या के अनुसरण करने से बन सकता है ।

गंगा की कौन-सी धारा है जिसे पर्व कहते हैं । मेरे महानन्द जी ने कहा कि पूर्णिमा का एक अलौकिक समय आता है जिस समय गंगा में एक महत्ता आती है । जिस पर्व के स्नान से मानव निर्मल बन जाता है ।

मुनिवरो ! वह गंगा हमारे शरीरों में रमण करती चली जा रही है । वह वेग से बहती चली जा रही है ! मुनिवरो । वह है हमारी सन्ध्या । जिसमें

ज्ञान का प्रकरण आता है और जिसके स्नान से हमारा हृदय निर्मल और स्वच्छ बन जाता है। मुनिवरो जो प्रातःकाल में सन्ध्या का अनुकरण करते हैं और एकान्त स्थान में विराजमान हो करके सन्ध्या का पान करते हैं और सन्ध्या में कहते हैं 'प्रातरग्निं'। मुनिवरो ! जब 'प्रातरग्नि का पाठ आता है तो कहते हैं हे विधाता !हमारी रक्षा करो। आज अपनी रक्षा चाहते हैं। यह जीवन आपका है। यह संसार आपका है। मुनिवरो ! मनुष्य सब ही कुछ देखो परमात्मा के अर्पण कर देता है। उस समय मनुष्य का हृदय निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। आत्मा के द्वारा जो मल विक्षेप आवरण हमारे पाप कर्मों द्वारा, दुष्ट कर्मों द्वारा आ जाते हैं वह उस प्रकाश से सब शान्त हो जाते हैं।

मुनिवरो ! जैसे एक वस्त्र है और उसमें बड़े ही दोष हैं। परन्तु जब वह जल के समीप जाता है तो जल उसे निर्मल और स्वच्छ बना देता है। इसी प्रकार हमें भी अपनी आत्मा के द्वारा जो मल विक्षेप आवरण हैं उनके शान्त करने के लिए हमें सबसे पूर्व माता सन्ध्या का पूजन करना है। उसके पाठ को करना है। "ऋतंच, सत्यंच" का पाठ करना है जिससे वास्तविक कल्याण हो जाएगा।

आज सबसे पूर्व अपने को बनाना है। मैंने आज से पूर्व काल में कहा था कि देखो जब मनुष्य 'शन्नो देवी' का पाठ करता है तो कहता है 'हे देवी तू कल्याण करने वाली है। तू हमारे कंठ में आ समा। जैसे जल हमारी तृषा का शान्त कर देता है उसी तरह हमारा कंठ उस जल रूपी तृषा का इच्छुक न रहे। हे शन्नो ! हमारा कंठ तो उस आनन्द का इच्छुक है। जैसे जल शीतल बना देता है उसी प्रकार हे शन्नो ! तू आ और हमारे कंठ में विराजमान हो। हे माता ! हमारा कंठ मधुर बने। सुन्दर बने। जिससे हे माता ! हमारे कंठ में जो वार्त्ता होगी यथार्थ होगी। अन्तःकरण तक जाएगी। हमारे द्वारा जो विक्षेप आवरण हैं हे "शन्नो देवी" तेरे से शांत हो जाएंगे। जैसे जल से तृषा शान्त हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान से हमारे मल विक्षेप आवरण शान्त जाएंगे। जब ज्ञान का प्रकाश हो जाएगा तो अंधकार कहां रहेगा। जैसे रात्री को शान्त करने वाला सूर्य प्रातः काल में आता है और रात्रि का नाश कर देता है इसी प्रकार हे शन्नो देवी ! तू वाणी में विराजमान हो जाएगी और वाणी का प्रभाव अन्तःकरण तक जाने के पश्चात् मल विक्षेप आवरण जो हमारे पापों से बन चुके हैं वह सब शान्त

हो जाएंगे। हे माता ! हम तुझसे अनुरोध करते चले जा रहे हैं। संध्या में सबसे पूर्व मुनिवरो ! अपने को बनाना है।

अहा ! सन्ध्या की तीन व्याहृतियां होती हैं। एक मुनिवरो देखो अपने को बनाना है कि मैं कौन हूं और मैं कैसा बनूं ? मेरा हृदय कैसा बने, मेरे चक्षुः, मेरे श्रोत्र, मेरी घ्राण कैसी बने ? मेरी त्वचा यह सब ही कुछ कैसे बने। अपने को परमात्मा के समर्पण कर दो। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को जानो। पहली व्याहृति यह है। द्वितीय व्याहृति वह है कि हम परमात्मा की सृष्टि का प्रकरण लेते हैं। हम परमात्मा का गुणगान गाते हैं हे परमात्मा ! अब हम आपके पात्र हुए हैं। मैंने आज से पूर्व काल में कहा कि परमात्मा के गुण गान गाने के लिए तुम पात्र बनो। जैसा मैंने यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में भी कहा था कि यज्ञोपवीत लेने से पूर्व तुम पात्र बनो। उसके पश्चात् तुम किसी की याचना कर सकोगे।

आज मुनिवरो ! जैसे किसी द्रव्यपति के द्वारा कोई सेवक है। और किसी काल में अपने स्वामी से कहता है कि मेरा जो वेतन है वह मुझे दो। मुनिवरो। वह वेतन किस काल में प्राप्त करता है। वह उसी काल में करता है जब वह पात्र बनता है। इसी प्रकार मुनिवरो ! हमें सबसे पूर्व अपने को बनाना है और अपने को जानना है। जब हम अपने को जान जाएंगे तो उसके पश्चात् हम परमात्मा के गुण गाने योग्य होंगे, प्रभु का गुणगान गाएंगे। एक समय वह आएगा कि प्रभु हमारा रक्षक बन जाएगा। मुनिवरो ! जब प्रभु हमारा रक्षक बन जाता है तो उस काल में वह हिंसक प्राणियों से जो हमें कष्ट देने वाले हैं उनसे हमारी रक्षा करता है। तो मुनिवरो आज सबसे पूर्व हमें पात्र वनना है और सब कुछ परमात्मा के अर्पण कर देना है।

मुनिवरो ! जैसा अभी-अभी व्याख्यान कर रहे थे कि संध्या में सबसे पूर्व 'शन्नो देवी' आता है ! हे 'शन्नो'। तू देवी है तू हमारे कंठ में विराजमान हो। मुनिवरो वह शन्नो हमारे कण्ठ में विराजमान हो जाती है। इसके पश्चात् आता है। चक्षुः चक्षुः। आगे प्रत्येक इन्द्रिय के लिए प्रभु से याचना करते हैं कि हे प्रभु तू हमारे चक्षुओं को पवित्र वना और कैसा बना कि हमारे द्वारा पाप दृष्टि न हो। यदि हमारे चक्षुओं में पापाचार की दृष्टि आ गई

तो वास्तव में हम पापी बन जाएंगे और एक समय वह आएगा कि वह पाप-दृष्टि हमारा मूल बन करके हमारा विनाश कर देगी।

हे विधाता ! हमारे जो श्रोत्र हैं यह आपकी वार्ता को स्वीकार करते रहें। दूसरों की निन्दा को स्वीकार न करें। ये आज गुणों को धारण करने वाले बनें। दूसरों की वार्ताओं को श्रवण करें। इसी प्रकार मुनिवरो ! हमारे जो हस्त हैं यह आपके अर्पण हैं विधाता ! इन्हें पवित्र करो। भुजा हमारे पवित्र हों। 'यशोबलम्' पवित्र हो। यह कैसे पवित्र बनेंगे ? जब प्रभु का गुणगान गाएंगे और इन सबको प्रभु के अर्पण कर देंगे। हम श्रद्धालु बन करके उस प्रभु का अनुकरण करते हैं तो वास्तव में हमारे भुजा विधाता से कहा करते हैं कि हे विधाता ! यशोबलम्। यह किसी प्रकार भी ऐसा कार्य न करें कि किसी निरपराधी को दण्ड दें। यदि निरपराधी को दण्ड देंगे तो विधाता हमारा विनाश हो जाएगा। द्वितीय आकर हमारे पर आक्रमण करेगा। आज हम यह चाहते हैं कि हमारे भुजा पवित्र कार्य करें। आज जब हम निरपराधी की रक्षा करेंगे तो वास्तव में कल्याण होगा। हे देव ! कल्याण के करने हारे ! तू आ और हे भगवन ! हम तेरे अर्पण हैं।

मुनिवरो देखो। इसके पश्चात् आगे चलकर यह पद अशुद्ध मार्ग पर न चलें। यह उस मार्ग में चलें जहां ऋषि महर्षियों का सत्संग हो रहा हो। यह उस मार्ग को चलें जहां प्रभु ! आपका गुणगान गाया जा रहा हो। जहां दुराचारियों का गुण गान गाया जा रहा हो उस मार्ग को न चलें, वह मार्ग मानव के कल्याण के लिए नहीं।

आगे सन्ध्या की व्याहृतियां क्या कह रही हैं बेटा ! अंग हमारे पवित्र हों। हृदय उदार हो, पवित्र हो।

इसी प्रकार मुनिवरो ! आगे चलकर प्राणायाम क्रिया करके मार्जन किया करते हैं। प्राणायाम से कहते हैं भूः, भूवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। हे विधाता ! प्राणायाम करें, समाधि में लय हो जायें जिससे हम इन भूः, भूवः, स्वः, महः, जनः, तपः लोक लोकान्तरों में पहुंच सकते हैं। विधाता हमारे द्वारा और कोई साधन नहीं जिससे हम इन लोक लोकान्तरों को जान सकेंगे हम आपकी महिमा को देख सकें। यह है मुनिवरो सबसे पूर्व अपने को बनाना।

मुनिवरो ! उसके पश्चात् आता है ऋतंच सत्यंच । हे विधाता ! तू वास्तव में सत्यंच है । तू वास्तव में सत्य है, पवित्र है । हे विधाता ! अब हम तेरे आंगन में आने योग्य हो गए हैं । अब हम पवित्र बन गये । हैं हमने सब ही कुछ आपके अर्पण कर दिया है । उस समय प्रभु का गुण गान गाते हैं ।

प्रभु का गुण गान गाने के पश्चात् प्रभु को रक्षक बनाते हैं । प्रभु हमें हिंसक प्राणियों से बचाओ । उनसे हमारी रक्षा करो । एक समय वह आता है जब परमात्मा रक्षक बन जाता है और हमारा कल्याण करने लगता है ।

मुनिवरो ! प्रभु मानव का कल्याण किस काल में करता है ? जब हम प्रभु के आंगन में जाने योग्य हो जाते हैं । जैसे मुनिवरो ! माता अपने प्यारे पुत्रों को लोरियों का पान किस काल में कराती है ? जब प्यारे पुत्र व्याकुल हो जाते हैं और माता की याचना करते हैं । तब वह माता अपने पुत्रों के भाव को जान लेती है कि मेरा पुत्र क्षुधा से व्याकुल है । जिसे अपनी लोरियों में लगाकर आनन्दित करा देती है । इसी प्रकार मुनिवरो । वह परमात्मा हमारी रक्षा किस काल में करता है जब हम व्याकुल हो जाते हैं और व्याकुल हो करके वैराग्य हो जाता है केवल उस परमात्मा का ध्यान रहता है उस काल में परमात्मा हमारा रक्षक बन करके हमारा कल्याण करता है ।

मुनिवरो ! यह है ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुई सन्ध्या । ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में मानव कल्याण के लिए सन्ध्या को उत्पन्न किया है । यह मानव के कल्याण करने वाली वह सन्ध्या है जिसका सब ही देवताओं ने अनुकरण किया है । हे सन्ध्या तू वास्तव में अमृत को पान कराने वाली है । तेरे से देवता अमृत पान करते हैं । यह वह सन्ध्या है जिससे ऋषि बन जाते हैं, जिससे देवता बन जाते हैं, विष्णु बन जाते हैं, शिव बन जाते हैं । यह वह सन्ध्या है जिसके प्रभाव से मानव राम और भगवान कृष्ण जैसा हो जाता है । यह वह सन्ध्या है, जिसका गुणगान करके संसार में कल्याण की भावनाएं आती हैं ।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय निर्णय कराया और आधुनिक काल का एक आदेश दिया और कहा कि सन्ध्या का पाठ प्रारम्भ है । परन्तु यह जो मनीराम है यह और ही कहीं भ्रमण कर रहा है । (हास्य) यह कहीं

द्रव्यों में भ्रमण कर रहा है तो कहीं पापाचारों में भ्रमण कर रहा है। हमने जो पूर्व पाप किए हुए हैं वह समक्ष आ जाते हैं और वह मनीराम उनमें लग जाता है।

मुनिवरो ! मैंने अब से पूर्व अभी-अभी कहा है और पूर्व भी कह चुका हूं कि इसके लिए सबसे पूर्व अभ्यास करते-करते अपने श्रोत्रों को प्रभु के अर्पण कर देना है। जब यह प्रभु में अर्पण हो जाएंगे और तुम प्रभु को अर्पण करोगे तो यह जो तुम्हारा मनीराम है यह शनैः शनैः प्रभु के अर्पण किया जायेगा, प्राणायाम के अर्पण किया जायेगा। उस समय हे मानव ! तुम प्रभु के आंगन में जाने योग्य हो जाओगे और प्रभु तुम्हारा कल्याण करेंगे। यह मन कहीं भ्रमण नहीं करेगा। मैंने आज से पूर्व काल में कहा है कि विकल्पों को त्याग दो और संकल्पों को धारण कर लो इससे मन का विच्छेद हो जायेगा। यह मन एक संकल्प में लग करके तुम्हारा कल्याण कर देगा।

यह है मुनिवरो ! आज का हमारा आदेश जो प्रारम्भ हो रहा था। उच्चारण करते-करते बहुत दूर चले गये। उच्चारण कर रहे थे कि हे विद्या ! तू हमारा कल्याण करने वाली है। माता ! जब यह संसार तेरे आंगन में आ जाता है तो संसार का उत्थान हो जाता है। राजा यदि तेरा अनुकरण करता है तो राजा महान बन जाता है। मेरी माताएं तुझे कंठ में धारण कर लेती हैं तो उनके गर्भ में वह बालक उत्पन्न होते हैं जो देवता बन जाते हैं। आज तेरा अनुकरण करने वाले देवता बन जाते हैं। आज तू सबको देवता बनाने वाली है।

मैंने परमपिता परमात्मा की कृपा से उस समय को देखा है जिस समय मेरी प्यारी माताओं का अन्तःकरण पुकार कर कहता था, मानव का अन्तःकरण पुकार कर कहता था कि हम संसार में अपने भोगों को भोगने के लिए आये हैं। हमें ऐसा कार्य नहीं करना कि भोग ही भोग लें। आज वह कर्म नहीं करना है संसार में।

मुनिवरो ! वह कौन-सा भोग है संसार में जो हमें भोग लेता है ?

मुनिवरो ! हमारे आचार्यों ने पूर्व काल में एक पति और पत्नी का सम्बन्ध कहा है। इसका अभिप्राय है जैसे परमात्मा ने सृष्टि को उत्पन्न किया

है कि मानव कर्म करे। यह उत्पन्न करने वाली सृष्टि है। इसी प्रकार मेरी प्यारी माताओं का, मेरे प्यारे भद्र पुरुषों का ब्राह्मणों द्वारा संस्कार हुआ है। आचार्यों के द्वारा प्रतिज्ञा ली है भोग भोगने के लिए परन्तु ऐसी नहीं कि भोग उल्टे हमें भोग लें। मुनिवरो ! आज हमें भोग भोगना है संसार में। आज संयम को ग्रहण करना है। आज हमें पुत्र उत्पन्न करने के लिए शैय्या को ग्रहण करना है। महात्मा दधीचि को, अश्विनी कुमारों को, नारद जैसे आचार्यों को उत्पन्न करना है। मेरी माताओं को राजा उत्पन्न करना है तो हरिश्चन्द्र को, राजा दलीप को, महाराजा राम जैसे राजाओं को उत्पन्न करना है। मुनिवरो वे कैसे होंगे ?

आज वे भोगों को भोगने से नहीं होंगे। वह हमारे कर्म करने से होंगे। गर्भ स्थापन हो जाये, पति-पत्नी उस प्रभु की याचना करें, उन पुत्रों को अपने में धारण करें जिससे हे माता तेरे गर्भ स्थल में रहने वाले बालक के अंग प्रत्यंग में तेरी भावनाएं समा करके वह महान दानी व पवित्र बने। वह तेरे अन्तः-करण से उत्पन्न होने वाला बालक पवित्र बने।

मुनिवरो ! क्या करें ? जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय निर्णय कराया कि आज का संसार तो कहता है कि परमात्मा ने संसार भोग भोगने के लिए उत्पन्न किया है भोग भोगो, परन्तु आज का संसार इतना चिन्तित हो गया है कि भोगों ने ही आज के संसार को बुरी तरह भोग लिया है।

मुनिवरो। हम उच्चारण करते-करते कहां पहुंच गये। उच्चारण कर रहे थे, 'हे परमात्मन ! तू कल्याण करने वाला है। हे सन्ध्या ! तू कल्याण करने वाली है। आज हमें सन्ध्या का पूजन करना है। सन्ध्या के गुणों को अपने में धारण करना है। हमें माता दुर्गे की याचना करनी है। हे माता ! तू अष्ट भुजों वाली और कल्याण करने वाली है। तू आ और कल्याण कर। यज्ञ करना है। उसके समीप जाना है। यह है बेटा आज का हमारा आदेश। अब यदि समय मिला तो शेष वाक्य किसी द्वितीय काल में प्रकट किए जायेंगे।

——

शंका—श्री ब्रह्मचारी जी ने शन्नो देवी मन्त्र का भाव समझाते हुए हे शन्नो ! ऐसा संबोधन क्यों दिया है जबकि वेद में वह सम्बोधनार्थक नहीं है ?

समाधान—श्री ब्रह्मचारी जी के समस्त 'प्रवचन' रहस्यों की व्याख्या के समय अलंकारिक होते हैं। जैसे उन्होंने इसी प्रवचन में तीसरी बार मुनि-वर कहकर सम्बोधित किया है तब इसी सन्दर्भ में 'जब देवता सन्ध्या के द्वार पर जाते हैं तो सन्ध्या पुकार कर कहती है' इत्यादि से सन्ध्या का जड़ होने से पुकार कर कहना नहीं बनता किन्तु संध्या को माता का रूपक दे देने पर ऐसा कहना आलंकारिक हो जाने पर कोई दोष नहीं रहता। इसी प्रकार हे शन्नो: को सन्ध्या का प्रतीक बनाकर सम्बोधन दोष नहीं किन्तु गुण बन जाता है, जो कि एक साहित्यिक विषय के अन्तर्गत आ जाता है।

यह विद्वानों की भाषा का एक विशेष गुण धारण कर लेता है।

प्रश्न—क्यों जी। श्री ब्रह्मचारी जी ने जिस प्रकार आज मृत लोक में प्रसिद्ध वेद मन्त्रों की व्याख्या की है—इसी प्रकार के अपने प्रवचनों की भाषा के मन्त्र तथा वेद पाठ के समक्ष भी ऐसे मन्त्रों और मृतलोक की वैदिक तथा संस्कृत भाषा का भी प्रयोग क्यों नहीं करते ?

उत्तर—श्री ब्रह्मचारी जी मृतलोक में उपलब्ध वेदों की व्याख्या रूप संहिताओं और शाखाओं का परिचय कराने के लिए तथा प्राचीन कालीन भाषा का भेद जो पाणिनिव्याकरण से पूर्ववर्ती व्याकरणों के आधार पर था उसका भी स्वरूप प्रकाशित करने के लिए उन प्राचीन नियमों का पालन करते हैं। इसी आधार पर आजकल के व्याकरण के विरुद्ध जो अशुद्धियां हम उनकी भाषा में पाते हैं वह प्राचीन भाषा के प्रचलन के अनुसार अवश्य ही शुद्ध होंगी। यही कारण है कि हमने उनकी भाषा को कहीं भी शुद्ध करने का साहस नहीं किया है क्योंकि यह सब विषय पूर्ण अनुसंधान का है। अपनी वैदिक अनुसन्धान समिति इन्हीं रहस्यों का पता लगाने के लिए श्री ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों का संकलन कर रही है और विविध विद्वानों से सम्पर्क कर रही है।

——

यज्ञ विधान और विज्ञान

आज मुनिवरो ! देखो संसार में इस प्रकार के बहुत से वाक्य हैं जो हमारी बुद्धि से पृथक् हैं। पृथक् होते हुए भी वे हैं अवश्य और उनका अस्तित्व भी है। आज हमारे वेद-पाठ में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन हो रहा था। एक यज्ञ आत्मिक होता है और दूसरा भौतिक। अहा ! भौतिक यज्ञ कैसे करें ? इस पूजा को कैसे कल्याणकारी बनायें ? यह ही मानव का विचारणीय विषय है। हमारे आदि ब्रह्मा ने एक वाक्य कहा था कि बेटा ! तुम संसार में जा तो रहे हो पर संसार की स्थिति तो जानो। वहां जाकर अपने उच्च विधान से कार्य करोगे तो तुम्हारा विधान उच्च रहेगा। अन्यथा तुम्हारा विधान सब सूक्ष्म बन जाएगा। यदि प्रजा या एक दूसरे प्राणी को ऊंचा बनाना है तो पूर्व स्वयं ऊंचे बनो। यज्ञ करना है और यज्ञ द्वारा प्रजा को लाभ पहुंचाना चाहते हो तो सबसे पूर्व यज्ञ को विधान से रचाओ। उस सब क्रियाओं से रचाओ जो हमारे महर्षियों ने वर्णन की हैं और वेदों के अनुकूल हैं। बिना विधान यज्ञ करने से यज्ञ न करने के बराबर हो जाता है।

मुनिवरो ! एक समय हमारे महानन्द मुनि ने प्रश्न किया था कि यज्ञ की कितनी प्रकार की परिपाटी होती है और यज्ञ का कैसा विधान होता है। आज वेद का वही प्रकरण आ गया है जो महानन्द जी ने अब से बहुत पूर्व प्रश्न किया था। तो मुनिवरो ! आज का वेद पाठ यही उत्तर दे रहा है कि यदि यज्ञ रचाओ तो उसकी क्रियाओं को पूर्व ही जान कर करो। सूक्ष्म यज्ञ रचाओ या विशाल यज्ञ, उसके लिए पहले से ही उच्च विधान बनाने की आवश्यकता है। उसके लिए सुन्दर तथा महान योजना बनाओ। जिससे तुम्हारे लिए सभी प्रकार के देवता लाभदायक हों, जिन्हें आह्वान करके हव्य पदार्थ अर्पण करना चाहते हो। इससे हमारा वाक्य केवल यह नहीं कि आज हम हव्य से ही इस सुविधा को बनायें। ऊंची भावनाएं बनाओ और ऊंची भावनाओं से देवताओं का अच्छी प्रकार पूजन करना चाहिए। क्योंकि हम जब तक किसी ऊंचे व्यक्ति के लिए या ऊंचे देवताओं के लिए सुन्दर कार्य नहीं करते तब तक वह देवता हमें न कोई महत्व, न वाणी, न प्रकाश, न प्राण ही प्रदान करेंगे।

इसलिए मुनिवरो ! यज्ञ करो तो विधान से करो और चुनकर करो। उद्‌गाता चुनो, अध्वर्यु चुनो, ब्रह्मा चुनो और यज्ञमान चुनो। मुनिवरो ! यज्ञमान के विधान में ऐसा कहा गया है कि हमारे महर्षियों ने आदि ब्रह्मा ने तथा महर्षि तत्ववेतु मुनि महाराज ने ऐसा ही कहा है कि यज्ञमान की धर्मपत्नी के बिना यज्ञ सफल नहीं होता। ऐसा ही बेटा ! राजा रावण ने राजा राम के यज्ञ कराते समय कहा था कि "जब तक तुम्हारी धर्मपत्नी न होगी तब तक यज्ञ की क्रिया अच्छी प्रकार न होगी और हे राम ! तुम्हारा यज्ञ कदापि सफल नहीं होगा"। तो मुनिवरो ! आज महानन्द जी प्रश्न कर रहे हैं कि उन्होंने यज्ञ किस प्रकार किया और कैसे किया !

मुनिवरो ! उसका कुछ सूक्ष्म रूप हम तुम्हारे आगे आज वर्णन कर रहे हैं। यज्ञ जो होना चाहिए विधान के अनुकूल ही होना चाहिए जिससे मानव का जीवन ऊंचा बने। यह जो मानव का शरीर है यह भी एक प्रकार का यज्ञ है। आज तुम इस शरीर रूपी यज्ञ के लिए नाना प्रकार की अशुद्ध आहुतियां देते रहो, अशुद्ध भोजन देते रहो तो यह तुम्हारा शरीर रूपी यज्ञ नष्ट हो जाएगा। तुम्हारा जीवन भी नष्ट हो जाएगा। यदि तुम शरीर को अच्छा पदार्थ नहीं दोगे तो वह तुम्हें कदापि अच्छी बुद्धि नहीं देगा। तो मुनिवरो ! जो तुम यज्ञ करो उसमें शाकल्य भी महान ऊंचे होने चाहिएं। जैसे परमात्मा ने हमारे शरीर को विधान से बनाया है इसमें वायु भी है, अन्तरिक्ष भी है, इसमें बेटा ! जल भी है, पृथ्वी भी है, सब कुछ है। ये सब एक साथ कार्य करते हैं यदि मुनिवरो ! एक भी विधान परमातमा पृथक् कर दे तो हमारे शरीर का हरिओम तत्सत् हो जाएगा। तो मुनिवरो ! यह हमारा आज का आदेश था कि यज्ञ करो तो विधान से करो। देव यज्ञ करने की मनो इच्छा है तो प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या को विधान से करना चाहिए।

मुनिवरो ! अभी-अभी त्रेता के समय का एक वाक्य हमारे कंठ आ गया है जो महानन्द जी ने बहुत पूर्व प्रश्न किया था। वर्णन तो बहुत विशाल है। इसका वर्णन अन्यत्र कहीं बड़ा विशाल होगा। अब तो तुम्हें केवल त्रेता के समय का वर्णन सुनाये देते हैं। वह क्या है ? वह मानव के जीवन को ऊंचा बनाने वाला है। आज प्राय: मानो महानन्द जी के कथनानुसार वह अशुद्ध माना जाता है परन्तु हम तो महर्षि बाल्मीकि जी के अनुकूल अपने कथन को प्रारम्भ कर रहे हैं। महर्षि बाल्मीकि ने ऐसा कहा है कि जब राजा राम अपने महान शिष्य गणों को लेकर ! सुग्रीव की सेना को लेकर समुद्र तट

पर जा पहुंचा वहां उनके दो बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। जिनको बेटा ! नल और नील कहते थे। जो शिल्प विद्या बहुत ही अच्छी प्रकार जानते थे। उन दोनों वैज्ञानिकों ने समुद्र का शेष (पुल) बांधना प्रारम्भ किया तो मुनिवरो ! इसके पश्चात् ऐसा कारण बना जिससे रावण को विदित हो गया कि राम संग्राम करने को विराज रहा है। इस पर वह विचारने लगा कि मुझे क्या करना चाहिए। बेटा ! यह तो हमने तुमसे पूर्व ही वर्णन किया था कि राजा रावण बहुत ही बुद्धिमान था। वह चारों वेदों का ज्ञाता था वह अपनी क्रियाओं को भी भली भांति जानता था।

शासक और दुराचार—राजा और राजनीति

तो मुनिवरो ! हमने कुछ ऐसा सुना है कि रावण ने अपने विधाता विभीषण को कंठ (याद) किया और मन्त्री से कहा जाओ आज विभीषण को मेरे समक्ष लाओ, उनसे कुछ वार्ता उच्चारण करूंगा। तो उस समय बेटा ! वह मन्त्री जी वहते भये विभीषण के द्वार जा पहुंचे। उस समय विभीषण ने कहा आज कैसा सौभाग्य है जो मेरे बिधाता ने जो परमात्मा के बड़े विरोधी हैं, मुझे कंठ किया है। मैं तो परमात्मा का बड़ा प्रिय हूं। उस समय वह अपना सौभाग्य मनाते हुए राजा रावण के समक्ष जा पहुंचे। राजा रावण ने कहा, 'आइए विधाता, विराजिए'। तब विभीषण ने कहा मेरे योग्य कौन सेवा है, विधाता ? आप तो परमात्मा के विरोधी हैं आपने आज परमात्मा के भक्त को अपने समक्ष बुलाया है यह क्या बात है ?

उस समय रावण ने कहा, नहीं-नहीं विधाता ! मैं तो तुमसे कुछ प्रार्थना कर रहा हूं। मेरी एक इच्छा है आज राम मुझसे संग्राम करने आ रहा है। पूर्व तो मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम प्रिय परमात्मा के भक्त हो, नित्य प्रति ओ३म् का जप किया करते हो, मैं यह जानना चाहता हूं कि मैं राम पर विजय पा सकता हूं या नहीं ?

उस समय बेटा ! विभीषण ने यह कहा था कि 'हे भगवन ! आप सात जन्म धारण करेंगे तब भी राम से विजय प्राप्त नहीं कर सकते।'

उस समय रावण ने कहा—'यह कैसे हो सकता है ?'

उस समय विभीषण ने कहा—'विधाता ! वह जो राम हैं बड़े वैज्ञानिक हैं, बड़े बलवान हैं।'

रावण ने कहा, 'अरे ! हम भी तो वैज्ञानिक हैं।'

उस समय विभीषण ने कहा,, 'महाराज ! आपके विज्ञान और उनके विज्ञान में कुछ विभिन्नता है।'

(रावण) क्या भिन्नता है ?

(विभीषण) 'हे विधाता ! राम के द्वारा दोनों ही पदार्थ हैं। देखो आत्मिक सत्ता भी और वैज्ञानिक सत्ता भी। दोनों सत्ताओं से वह तुम्हें विजय कर सकता है।'

उस समय रावण ने कहा, 'तो हमें क्या करना चाहिए।'

उस समय विभीषण ने कहा—'मेरी इच्छा तो यह है देखो, यह तो पूर्व ही नियम है कि जिस राजा के राज्य में दुराचार होता है या जो राजा किसी कन्या देवी का हरण करता है। उस राजा का राज आज नहीं तो कल अवश्य समाप्त हो जाता है। हे भगवन ! आपका तो विनाश होने वाला है। यह तो मुझे पूर्व ही बिदित हो रहा था। यदि आप मेरी याचना को स्वीकार करें तो विधाता ! माता सीता को ले जाइए और राम के चरणों का जाकर स्पर्श कीजिए । वे आपको अवश्य तथास्तु करेंगे।'

उस समय जब रावण ने अपने विधाता से यह वाक्य सुना तब उसने क्रोध में आकर कहा, 'अरे विधाता ! तुम मेरे विधाता नहीं शत्रु हो। क्या मैं अपने शत्रु के चरणों का स्पर्श करूं' ?

उस समय बेटा ! देखो, जव विनाश का समय आता है तब बुद्धि उसी प्रकार बन जाती है। रावण ने अपने पदों की ठोकर से अपने विधाता को ठुकराना प्रारम्भ कर दिया।

उस समय विभीषण ने कहा, 'नहीं विधाता ! मैं आपके हित की बात कर रहा हूं।'

उन्होंने कहा, 'अरे ! मैं हित की बात नहीं चाहता। जाओ तुम भी वहीं चले जाओ जिसकी तुम आज मुझसे प्रशंसा कर रहे हो।'

देखो मुनिवरो ! उस समय जब रावण ने उन्हें अपने राष्ट्र में न रहने दिया तब वह बहते भये, समुद्र पार कर राम के समक्ष जा पहुंचे। राम ने उनका सब परिचय लिया। विभीषण ने अपने जीवन की जो भी घटनाएं थीं

पर जा पहुंचा वहां उनके दो बहुत बड़े वैज्ञानिक थे। जिनको बेटा ! नल और नील कहते थे। जो शिल्प विद्या बहुत ही अच्छी प्रकार जानते थे। उन दोनों वैज्ञानिकों ने समुद्र का शेष (पुल) बांधना प्रारम्भ किया तो मुनिवरो ! इसके पश्चात् ऐसा कारण बना जिससे रावण को विदित हो गया कि राम संग्राम करने को विराज रहा है। इस पर वह विचारने लगा कि मुझे क्या करना चाहिए। बेटा ! यह तो हमने तुमसे पूर्व ही वर्णन किया था कि राजा रावण बहुत ही बुद्धिमान था। वह चारों वेदों का ज्ञाता था वह अपनी क्रियाओं को भी भली भांति जानता था।

शासक और दुराचार—राजा और राजनीति

तो मुनिवरो ! हमने कुछ ऐसा सुना है कि रावण ने अपने विधाता विभीषण को कंठ (याद) किया और मन्त्री से कहा जाओ आज विभीषण को मेरे समक्ष लाओ, उनसे कुछ वार्ता उच्चारण करूंगा। तो उस समय बेटा ! वह मन्त्री जी वहते भये विभीषण के द्वार जा पहुंचे। उस समय विभीषण ने कहा आज कैसा सौभाग्य है जो मेरे विधाता ने जो परमात्मा के बड़े विरोधी हैं, मुझे कंठ किया है। मैं तो परमात्मा का बड़ा प्रिय हूं। उस समय वह अपना सौभाग्य मनाते हुए राजा रावण के समक्ष जा पहुंचे। राजा रावण ने कहा, 'आइए विधाता, विराजिए'। तब विभीषण ने कहा मेरे योग्य कौन सेवा है, विधाता ? आप तो परमात्मा के विरोधी हैं आपने आज परमात्मा के भक्त को अपने समक्ष बुलाया है यह क्या बात है ?

उस समय रावण ने कहा, नहीं-नहीं विधाता ! मैं तो तुमसे कुछ प्रार्थना कर रहा हूं। मेरी एक इच्छा है आज राम मुझसे संग्राम करने आ रहा है। पूर्व तो मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम प्रिय परमात्मा के भक्त हो, नित्य प्रति ओ३म् का जप किया करते हो, मैं यह जानना चाहता हूं कि मैं राम पर विजय पा सकता हूं या नहीं ?

उस समय बेटा ! विभीषण ने यह कहा था कि 'हे भगवन ! आप सात जन्म धारण करेंगे तब भी राम से विजय प्राप्त नहीं कर सकते।'

उस समय रावण ने कहा—'यह कैसे हो सकता है ?'

उस समय विभीषण ने कहा—'विधाता ! वह जो राम हैं बड़े वैज्ञानिक हैं, बड़े बलवान हैं।'

रावण ने कहा, 'अरे ! हम भी तो वैज्ञानिक हैं।'

उस समय विभीषण ने कहा,, 'महाराज ! आपके विज्ञान और उनके विज्ञान में कुछ विभिन्नता है।'

(रावण) क्या भिन्नता है ?

(विभीषण) 'हे विधाता ! राम के द्वारा दोनों ही पदार्थ हैं। देखो आत्मिक सत्ता भी और वैज्ञानिक सत्ता भी । दोनों सत्ताओं से वह तुम्हें विजय कर सकता है ।'

उस समय रावण ने कहा, 'तो हमें क्या करना चाहिए ।'

उस समय विभीषण ने कहा — 'मेरी इच्छा तो यह है देखो, यह तो पूर्व ही नियम है कि जिस राजा के राज्य में दुराचार होता है या जो राजा किसी कन्या देवी का हरण करता है। उस राजा का राज आज नहीं तो कल अवश्य समाप्त हो जाता है । हे भगवन ! आपका तो विनाश होने वाला है । यह तो मुझे पूर्व ही बिदित हो रहा था । यदि आप मेरी याचना को स्वीकार करें तो विधाता ! माता सीता को ले जाइए और राम के चरणों का जाकर स्पर्श कीजिए । वे आपको अवश्य तथास्तु करेंगे ।'

उस समय जब रावण ने अपने विधाता से यह वाक्य सुना तब उसने क्रोध में आकर कहा, 'अरे विधाता ! तुम मेरे विधाता नहीं शत्रु हो। क्या मैं अपने शत्रु के चरणों का स्पर्श करूं' ?

उस समय बेटा ! देखो, जब विनाश का समय आता है तब बुद्धि उसी प्रकार बन जाती है। रावण ने अपने पदों की ठोकर से अपने विधाता को ठुकराना प्रारम्भ कर दिया ।

उस समय विभीषण ने कहा, 'नहीं विधाता ! मैं आपके हित की बात कर रहा हूं।'

उन्होंने कहा, 'अरे ! मैं हित की बात नहीं चाहता । जाओ तुम भी वहीं चले जाओ जिसकी तुम आज मुझसे प्रशंसा कर रहे हो ।'

देखो मुनिवरो ! उस समय जब रावण ने उन्हें अपने राष्ट्र में न रहने दिया तब वह बहते भये, समुद्र पार कर राम के समक्ष जा पहुंचे। राम ने उनका सब परिचय लिया। विभीषण ने अपने जीवन की जो भी घटनाएं थीं

उन सबका वर्णन किया और कहा, 'महाराज ! मैं आपकी शरण आया हूं।' तब राम ने अपनी शरण दे दी।

बेटा ! वह वहां बड़े आनन्द पूर्वक रहने लगे। कुछ समय पश्चात् राम ने विभीषण से कहा, 'हे विधाता ! मैं एक वार्ता जानना चाहता हूं आप रावण के विधाता हैं, मैं रावण से संग्राम करने जा रहा हूं क्या मैं उससे विजय पा सकूंगा ?'

उस समय उन्होंने कहा, 'हे विधाता ! हे राम ! आप मेरी अनुमति लेते हैं तो मेरी यह अनुमति है कि आप सात जन्म भी धारण करेंगे तो भी रावण से विजय न प्राप्त कर सकेंगे।'

उस समय राम ने कहा, 'यह क्या है ? क्यों विजय नहीं पा सकूंगा ? क्या विशेषता है उसमें ?'

उस समय विभीषण ने कहा, 'हे राम ! वास्तव में तो रावण के पुत्र नारायन्तक आदि बड़े बलवान हैं। इसके अतिरिक्त रावण स्वयं ही बड़ा ज्ञानी और बलवान तथा वैज्ञानिक है। उसके पुत्रों में भी यही विशेषताएं हैं। राजा रावण का पुत्र नारायन्तक बड़ा ज्ञानी है उसने विज्ञान के महान यन्त्रों की खोज की है, वह तुम्हारा विनाश कर देगा। इन सब को भी त्याग दिया जाये तो इसके पश्चात् रावण के गुरु शिव महाराज हैं जो कैलाशपति हैं।'

बेटा ! शिव किसको कहते हैं ? शिव तो परमात्मा को कहते हैं परन्तु यहां तो बेटा ! ऋषि बाल्मीकि के कथनानुसार ऐसा उच्चारण किया जाता है कि राजा शिव जिसका संस्कार राजा हिमाचल के द्वारा माता पार्वती के समक्ष हुआ था वह कैलाशपति थे। जिसकी प्रजा कैलाश के तुल्य हो और प्रजा महान् हो, मुनिवरो ! उस राजा का नाम शिव होता है। जिस राजा के राष्ट्र में ज्ञान एवं विज्ञान से, आत्मिक बल से, वेदों के स्वाध्याय से, जिसकी प्रजा बहुत ऊंची हो, जिसके राष्ट्र में देवकन्याएं और मानव बहुत उच्च भावना वाले हों अर्थात् कैलाश पर्वत जैसी ऊंची भावना वाली प्रजा हो बेटा ! उस प्रजा के स्वामी को शिव कहा जाता है।

मुनिवरो ! शिव तो परमात्मा को कहते हैं और सूर्य का नाम भी शिव है। जो हम पूर्व ही उच्चारण कर चुके हैं। आज तो कोई प्रकरण नहीं चल रहा है। तो मुनिवरो ! राजा रावण के गुरु राजा शिव थे जिनकी प्रजा बहुत ऊंची थी, बहुत वैज्ञानिक थी।

(विभीषण) : ऐसा राजा जो रावण की सहायता करता हो उस राजा की विजय क्यों न होगी ? हे राम ! रावण के समक्ष चाहे जितने राम आ जाओ तब भी आप रावण के संग्राम में विजय नहीं पा सकोगे।

उस समय राम ने कहा, 'तो हे विधाता ! मुझे क्या करना चाहिए ? मुझे तो विजय पानी ही है।'

उन्होंने कहा, 'भगवन ! आप अजयमेघ यज्ञ कीजिए और यदि यज्ञ विधान द्वारा किया गया तो आपकी विजय अवश्य होगी। उस समय राम ने कहा, 'मैं अवश्य करूंगा। क्या शिव मुझसे प्रसन्न हो जाएंगे ?'

उस समय बेटा ! विभीषण ने कहा, 'विधाता ! यदि आप अजय मेध वह यज्ञ करेंगे और शिव को निमन्त्रण के अनुकूल नियुक्त करोगे तो आप सब के समक्ष आ जाएंगे। आप अवश्य विजय पाएंगे'।

उस समय बेटा ! राम ने विभीषण के आदेशानुसार वहां सब सामग्री जुटाना प्रारम्भ कर दिया। जब सब सामग्री घृत आदि वहां एकत्रित होने लगा। बुद्धिमानों को आमन्त्रित किया गया उस समय विभीषण ने कहा कि हे राम ! यदि यह सब सामग्री भी जुट जावे परन्तु जब तक यज्ञ का ब्रह्मा, रावण नहीं बनेगा तब तक आपका यज्ञ सफल नहीं होगा।

उस समय राम ने कहा, 'विधाता ! यह कैसे होगा ? मेरा शत्रु मेरे समक्ष कैसे आयेगा ?'

उन्होंने कहा कि देखो ! रावण इतना ज्ञानी है वास्तव में तुम निमंत्रण देने जाओ तो वह स्वयं आ जायेंगे और तुम्हारे यज्ञ को अवश्य सफल करेंगे।'

मुनिवरो ! महर्षि बाल्मीकि जी ने यह ऐसा वर्णण किया है कि विभीषण तो अपने स्थान पर चले गये और सामग्री जुट जाने के पश्चात् बेटा ! राम और लक्ष्मण ने रावण को निमन्त्रण देने की योजना बनाई। दोनों वहां से बहते हुए रावण के द्वार जा पहुंचे। रावण ने बेटा ! इससे पूर्व राम को कदापि नहीं देखा था। इसलिए रावण को उनकी कोई पहिचान न हो सकी। इस

समय रावण अपने न्यायालय में विराजमान न्याय कर रहा था। उस समय के न्याय को पाकर राम ने लक्ष्मण से कहा, 'रावण तो बड़ा नीतिज्ञ है। देखो! कैसा सुन्दर न्याय कर रहा है। धन्य हो। विधाता को निमन्त्रण दें तो कैसे दें'। उस समय वह वहां कुछ समय शान्त विराजमान हो गए। न्यायालय में जब रावण का न्याय समाप्त हो गया तब वे उनके समक्ष पहुंचे।

राम के आमन्त्रण पर रावण का धर्माचरण

उस समय रावण ने कहा, 'कहिए भगवन! किस प्रकार बहते हुए आए हैं। क्या याचना है?'

उन्होंने कहा, 'भगवन! हम एक अजयमेध यज्ञ कर रहे हैं। वेदों के अनुकूल आप हमारे यज्ञ को पूर्ण कीजिए।'

रावण ने कहा—'तथास्तु! जैसी तुम्हारी इच्छा होगी वैसा ही किया जायेगा।'

उस समय राम ने कहा, 'भगवन! समुद्र तट पर यज्ञ हो रहा है और हम आपको निमन्त्रित कर चुके हैं। हे विधाता! हम कल नहीं आ सकेंगे। तृतीय समय में आप स्वयं वहां विराजमान हो जाना।'

उस समय बेटा! रावण ने देखो! राम की उस याचना को स्वीकार कर लिया। वहां से वे दोनों विधाता! बहते हुए समुद्र तट पर आ पहुंचे।

मुनिवरो! अब हमने महर्षि बाल्मीकि के मुखारविन्द से ऐसा सुना है और हमारे महर्षि लोमश मुनि महाराज ने ऐसा देखा भी है। जब राम और लक्ष्मण दोनों अपने स्थान पर पहुंच गये तो वहां उन्होंने यज्ञ की सब सामग्री घृत आदि को एकत्रित किया और बड़ी सुन्दर यज्ञशाला बनाई। ऐसी सुन्दर यज्ञशाला बनाई जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

मुनिवरो! ऐसा विदित होने लगा जैसे ब्रह्मलोक से ब्रह्मा आ पहुंचा हो। अब देखो! द्वितीय समय भी समाप्त हो गया। तृतीय समय आ पहुंचा। अब रावण की वहां प्रतीक्षा होने लगी। कुछ समय के पश्चात् बेटा! रावण भी अपने पुष्पक विमान में विद्यमान होकर के उस महान भूमि पर आ पहुंचे।

जहां राम ने यज्ञशाला का निर्माण किया था। मुनिवरो ! वह वहां आ पहुंचे तो उन दोनों विधाताओं ने, प्रजा ने उनका बड़ा स्वागत किया। आते ही बेटा ! राम ने ! उसे अजयमेध यज्ञ का ब्रह्मा नियुक्त कर दिया।

मुनिवरो ! ब्रह्मा चुने जाने के पश्चात् जब वहां यज्ञोपवीत धारण किये जाने लगे उस समय रावण ने उन सबका परिचय लिया। उस समय उन्होंने कहा, "भगवन ! हमें राम कहते हैं" "हमें लक्ष्मण कहते हैं" जब उन्होंने अपना व्यक्तित्व उच्चारण किया तो रावण बड़े आश्चर्य में रह गया। अरे यह क्या हुआ ? यह तो बड़ा आश्चर्यजनक कार्य हुआ। उस समय उन्होंने कहा, अरे ! चलो जब तुम्हें ब्रह्मा चुना है तो तेरा कर्त्तव्य है कि विधि विधान से यज्ञ पूर्ण कराओ। उस समय उन्होंने कहा, 'धन्यवाद ! अहो तुम्हारी धर्म-पत्नी कहां है' ?

उस समय कहा, 'विधाता ! मेरी धर्मपत्नी तो आपके गृह लंका में है।' उस समय मुनिवरो ! रावण ने कहा अरे ! मैंने यज्ञ को विधान से नहीं किया तो मैं देवताओं का महापापी बन जाऊंगा। मुझे अजयमेध यज्ञ का ब्रह्मा इन्होंने बनाया है। मुझे परमात्मा ने बुद्धि दी है मेरा कर्त्तव्य केवल एक ही है। मैं सीता को लाऊं और यज्ञ को विधान से पूर्ण करूं।

महर्षि बाल्मीकि ने ऐसा कहा है कि वह वहां से अपने पुष्पक विमान में विद्यमान होकर लंका में सीता के द्वार जा पहुंचे और सीता से कहा, 'हे सीते ! तेरा स्वामी यज्ञ रचा रहा है समुद्र तट पर चलो।'

उस समय सीता ने कहा, हे रावण आप नित्यप्रति मिथ्या ही उच्चा-रण किया करते हो ? किसी समय सत्य भी उच्चारण किया करते हो ?'

'नहीं, नहीं सीते ! मुझे तुम्हारे स्वामी ने उस यज्ञ का ब्रह्मा चुना है।'

सीता ने जब इस आदेश को पाया तो प्रसन्न हो गई और उसके पुष्पक विमान में विद्यमान हो उसी स्थान पर जा पहुंचे जहां विशाल अजय-मेध यज्ञ करने का विधान बनाया गया था। वहां जाकर बड़े आनन्द से सीता, राम के दक्षिण विभाग में विद्यमान हो गई और रावण अपने दक्षिण विभाग में यज्ञ का ब्रह्मा बन गया। इसके पश्चात् यज्ञ आरम्भ होने लगा। मुनिवरो !

जब तक विधान से ऋत्विज नहीं चुने जायेंगे चाहे कैसा भी यज्ञ हो वह लाभदायक नहीं होगा।

वहां आनन्दपूर्वक ऋत्विज चुने गए। वहां अध्वर्यु आदि भी चुने गए। यज्ञोपवीत धारण किये और यज्ञ आरम्भ होने लगा।

तो मुनिवरो हमने ऐसा सुना है कि महर्षि वाल्मीकि के अनुसार तथा महर्षि लोमश मुनि के निर्णय अनुसार उन्होंने यज्ञ को देखा था कि यह यज्ञ इसी प्रकार चलता रहा।

मुनिवरो! जिस समय यज्ञ की पूर्णाहुति होने वाली थी उस समय सीता ने राम से कहा, 'हे राम! आप यज्ञ तो रच रहे हैं परन्तु रावण के लिए आपके पास कुछ दक्षिणा भी है या नहीं ?'

तब राम ने सीता से कहा, 'हे सीते! मेरे पास क्या है, मैं उन्हें क्या दक्षिणा दूं।'

सीता ने कहा, 'ये तो बड़ा द्रव्यपति राजा है। इसके यहां तो स्वर्ण तक के गृह हैं। मणियों के ढेर लगे रहते हैं। तो यह कार्य कैसे सम्पूर्ण होगा ?'

(राम) 'तो मैं क्या करूं ?'

उस समय बेटा! सीता नें क्या किया। उसके पास एक कौड़ी जूड़ा था वह उसने राम को दिया और कहा, 'लीजिए महाराज! आप ब्रह्मा (रावण) का स्वागत इससे कीजिए।'

देखो बेटा! सीता का यह कौड़ी जूड़ा राम ने स्वीकार कर लिया।

अब मुनिवरो देखो। यज्ञ चलता रहा। पूर्णाहुति होने के पश्चात् वहां बेटा! यथा शक्ति स्वागत होने लगा। राम और सीता दोनों उस कौड़ी जूड़े को लेकर रावण के समक्ष जा पहुंचे। रावण ने कहा, 'हे राम मुझे विदित होता है जैसे यह कौड़ी जड़ा सीता का हो।' उस समय सीता ने कहा, 'विधाता! यह कौड़ी जुड़ा मेरा क्या है यह तो शुभ कार्य है। यह तो मेरे पिता दशरथ ने किसी समय मेरे लिए आभूषण बनवाया था। आज यह आपके इस शुभकार्य में आ गया। मेरा क्या है।' उस समय रावण ने कहा, 'हे सीते!

मुझे तुम्हारी यह दक्षिणा स्वीकार है। परन्तु मैं किसी के श्रृंगार को भ्रष्ट नहीं करता चाहता।'

जब मुनिवरो ! रावण ने यह वाक्य कहा तो प्रजा सन्न रह गयी और कहा, 'अरे ! अरे रावण तो बड़ा बुद्धिमान है।' उस समय बेटा ! वहां यज्ञ पूर्ण हो गया। पूर्ण होने के पश्चात् रावण ने कहा कहा था 'हे राम ! विदित होता है कि तुम्हारी मनोकामनायें अवश्य पूरी होंगी।'

आशीर्वाद देकर सीता से कहा, 'हे सीते ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम अपने पति की सेवा करो, नहीं तो मेरी लंका को चलो।'

धर्म और यज्ञ का फलदायी महात्म्य

उस समय सीता ने कहा, 'हे विधाता ! आज से तो तुम मेरे पिता ब्रह्मा बन गए हो। मुझे तो यहां भी ऐसा और वहां भी ऐसा। मैं आपके द्वार चलूंगी।'

मुनिवरो ! इसका नाम धर्म है। राम ने भी यह नहीं कहा कि सीते तू कहां जाती है ? तब वह बेटा ! रावण के साथ पुष्पक विमान में विद्यमान हो गई। रावण ने उस समय ऋग्वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए सीता से कहा था, 'हे सीते ! आज मुझे विदित होता है कि मेरे विनाश का समय आ गया है, मेरी लंका नष्ट-भ्रष्ट होने वाली है।'

सीता ने कहा, 'हे विधाता ! आप इतने व्याकुल क्यों हो रहे हैं ?' उन्होंने कहा, 'हे सीते ! मेरी जो महान प्रजा है समाप्त होने वाली है। जो शत्रु बना बैठा है, जिसने शत्रु को अपना लिया अपना कर उसको ब्रह्मा बना करके उसकी आत्मिक ज्योति को खींच लिया। हे सीते ! उसकी मनोकामना क्यों न पूरी होगी ? आज मुझे विदित होता है कि मुझे यह यज्ञ पूर्ण नहीं करना था। यज्ञ पूर्ण होने से मुझे विदित हो गया कि मेरी लंका में एक भी मानव नहीं रहेगा।' यह वाक्य उच्चारण करते हुए रावण बड़ा शोक युक्त हो गया।

यह है बेटा ! आज का हमारा आदेश। हम उच्चारण कर रहे थे कि मानव को अगर दूसरे को लाभ पहुंचाना है। दूसरों को उन्नति पर पहुंचाना है तो उस यज्ञ को उस महान कार्य को विधान से करो। वेद मन्त्रों को जानो और उनको जानकर उनके अनुरूप वेदों का लक्षण करो। महान यज्ञ को

रचाओ। शुभ कार्य करो। यदि यज्ञ विधान से नहीं हुआ तो वह कदापि सम्पूर्ण नहीं होगा। मुनिवरो ! यह हमारा केवल नवीन मत नहीं है। यह तो उनका मत है जिन्होंने बेटा ! यज्ञ को सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न किया।

अरे देखो ! यह तो तुम्हारी बुद्धि में आने वाला वाक्य है कि परमात्मा ने जब सृष्टि प्रारम्भ की तो आत्मा के विरोध से की। यदि परमात्मा विधान से इस सृष्टि को न बनाता तो यह संसार इस प्रकार नहीं चल सकता था जैसा आज चल रहा है। परमात्मा ने इस सृष्टि रूपी यज्ञ को उत्पन्न किया।

आज हम मनुष्य रूपी यज्ञ को उत्पन्न करें। आज हम भौतिक यज्ञ करें। देवताओं को सुगन्धित हव्य पहुंचायें। देवताओं को पौष्टिक पदार्थ प्रदान करें। यह हमारा कर्त्तव्य है। आज हम विशेष यज्ञ के ऊपर ही प्रकाश दे रहे हैं। हमारा वेद पाठ यह ही कह रहा है कि यज्ञ को पूर्ण करो और पूर्ण विधान से करो। धर्म से करो, अधर्म से मत करो। दुर्भावना से न करो।

देखो ! जिस पद के अधिकारी हो या तुम्हें चुना गया है वह चाहे तुम्हारे लिए हानिकारक है परन्तु तुम्हारा कर्त्तव्य है कि उसका पूर्ण रूपेण पालन करो, उनको लाभ हानि न पहुंचाओ। यदि लाभ हानि पहुंचाओगे तो तुम्हें कोई लाभ प्राप्त न होगा।

(महानन्द) धन्य हो भगवन !

तो मुनिवरो ! अभी हम व्याख्यान दे रहे थे कि मानव को कार्य करने से पूर्व उसका महान विधान बना लेना चाहिए जैसा राजा रावण ने बनाया। चाहे आपत्ति आए चाहे जीवन समाप्त हो जाए परन्तु उसका शाकल्य पूर्ण बनाओ। जिस पद के अधिकारी हो उसे पूर्ण करो, ऊंचे कर्त्तव्य करो, जीवन की योजना को ऊंचा बनाओ। शरीर रूपी यज्ञ को भी जानते रहो, शरीररूपी यज्ञ में जो महान यज्ञमान यह आत्मा है जो आत्मा को प्रेरणा दे रहा है वह संसार रूपी यज्ञ को प्रेरणा दे रहा है। और वह संसार रूपी यज्ञ को उत्पन्न करने वाला है, उसका यज्ञमान बना बैठा हुआ है आत्मा। आज आत्मा को जानो, आत्मा को पहचानो। परन्तु आत्मा तभी जानी जाएगी जब तुम शुद्ध रूप से यज्ञ रचाओगे। ऊंचे कर्म करोगे तभी तुम्हारी आत्मा बलवान होगी। जैसे राजा राम ने शुभ कर्म किए जिससे उनकी आत्मा बलवान हो गई और

रावण को विजय कर लिया।

यज्ञ ही हमारा जीवन है

मुनिवरो ! मैंने सुना है और प्रभु की अनुपम कृपा से देखा भी है जब महाराजा शिव और पार्वती एक स्थान में विराजमान हो करके प्रभु का चिन्तन किया करते थे कि हमारा जीवन हिमालय के तुल्य स्थिर हो। हमारा जीवन कैलाश के तुल्य हो। कैलाश वह पदार्थ है कि शरद वायु आती है हिम गिरा जाती है और ग्रीष्म में सूर्य तपायमान करता है। परन्तु वह महान सबको सहन करता रहता है। इसी प्रकार हमारा जीवन भी नाना समस्याओं को सहन करने वाला हो। हमारा जीवन एक विचित्र और यज्ञमय हो। देवी ! आज हम राजा हैं, हमें राष्ट्र को कैलाश बनाना है। आज हम उन कर्मों को करने नहीं आए जिससे हे देवी ! हमारी राष्ट्रीयता समाप्त हो जाए। जिससे हमारा जो कैलाश है वह हमें अपनी गोद में धारण न कर सके।

मुनिवरो ! वह कैलाश कौन है ? कैलाशपति कौन है ?

कैलाश राष्ट्र है। वह राष्ट्र कैलाश है जिस राष्ट्र में सदाचार की लहरें हों। जहां गंगा की पवित्र धारा हो। वह कौन-सी पवित्रता है ? वह है सुषुम्ना नाड़ी की जागृति। हम इंगला, पिंगला और सुषुम्ना नाम की नाड़ियों को जागृत करने वाले हों। देखो देवी ! उसको कैलाश कहा जाता है। प्रजा कैलाश है और कैलाश का पति शिव है। हमारे शरीर में भी यह इन्द्रियां कैलाश हैं, इनका पति यह आत्मा है। यह इन्द्रियों को प्रेरित करने वाला मनिराम भी बड़ा विलक्षण है। यह मानव को कहीं का कहीं ले जाता है। आज हमें तो पवित्र और सदाचारी बन करके चलना है।

कल मेरे प्यारे महानन्द जी ने यज्ञोपवीतम के सम्बन्ध में एक प्रश्न किया। वास्तव में तो मैंने आज से पूर्वकाल में यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है, आज भी कुछ धारा देता चला जाऊं। मुनिवरो ! यज्ञशाला में जाने का वह अधिकारी है जिसके द्वारा यज्ञोपवीत हो। यज्ञोपवीत वह पदार्थ है जो हमें परमात्मा के मार्ग में ले जाने के लिए प्रेरित करता है। जिसके धारण करने से परमात्मा का ज्ञान जाना जा सकता है। मेरे प्यारे महानन्द जी तो यह कहेंगे कि एक सूत्र के धारण करने से संसार का ज्ञान-विज्ञान कैसे

जाना जायेगा। मुनिवरो! यह एक पवित्र धागा है, इसे विचारना है। इसके विज्ञान को जानना है। एक मूल धागा है परन्तु उससे नाना प्रकार के वस्त्र बन जाते हैं। इसी प्रकार यह धागा है 'यज्ञोपवीतम' जो परम पवित्र है। यह आर्यों का सबसे प्रथम प्रतीक है और उस परमपिता परमात्मा ने दिया है। जब हम माता के गर्भ-स्थल में आते हैं वहां भी परमात्मा हमें यज्ञोपवीत देता है। कैसे देता है?

मुनिवरो! जब हम माता के गर्भ में होते हैं तब एक नाड़ी उसी प्रकार की होती है जैसे यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। जब परमात्मा ने माता के गर्भ में बालक को यह प्रतीक दिया है तो हमें यह प्रतीक बाहर भी धारण करना चाहिए। मुनिवरो! देखो उस नाड़ी का सम्बन्ध हमारी आत्मा से होता है, हमारे जीवन से होता है। इसी प्रकार इस यज्ञोपवीत का सम्बन्ध आत्मा से होता हुआ उस परमपिता परमात्मा से होता है जो हमारा कल्याण करता है। हमारे कल्याण के लिए विधान बन रहा है और संसार को ऊंचा बनाता चला जा रहा है और बनाएगा।

मुनिवरो! यज्ञोपवीतम् परम् पवित्रम्। आज हर मनुष्य का परम पवित्र बनना उसका कर्त्तव्य है। जब तक हम सब अपने परम पवित्र यज्ञोपवीत को धारण करके अपने विचारों को यदि पवित्र नहीं बना सकते तो हमारा जीवन किसी प्रकार भी यज्ञमय न होगा। आज हमें यज्ञ वेदी पर आ जाना है। यज्ञवेदी वह पदार्थ है जहां यज्ञोपवीत होता है। वेदी हमारे यहां आत्मा को भी कहते हैं और वेदी यज्ञशाला को भी कहते हैं।

मुनिवरो! यह आत्मा कैसे वेदी है? जब यज्ञोपवीत को धारण करके हम चलते हैं, अपने विचारों को परम पवित्र बनाते हैं तो हमारे संकल्पों का, हमारी बुद्धि का, सबके विचार आत्मा के द्वारा जाते हैं और अन्तःकरण रूपी थैली में विराजमान हो जाते हैं। यह है आत्मा रूपी वेदी।

यज्ञशाला को भी वेदी कहते हैं क्योंकि जब परम पवित्र यज्ञोपवीत को धारण कर ब्रह्मा ऋत्विज के द्वारा जाते हैं। उस समय हमारे जो परम पवित्र विचार हैं, जो संकल्प हैं, वह सामग्री के द्वारा ओत-प्रोत हो करके देवताओं तक पहुंचेगे और देवता हमारे उन विचारों को हमें देंगे वह हमारे सूक्ष्म से

परम पवित्र विचारों को कई गुना पवित्र बना करके संसार को देंगे। संसार का उन विचारों से कल्याण होगा। तो हे मेरे प्यारे ऋषि मण्डल ! हे मेरे भद्र विद्वत ! मण्डल ! हे मेरे विद्वत मण्डल ! तू विद्वत मण्डल है। तू प्रकाश का मण्डल है। आज तू संसार में प्रकाशवान बन। ऐसा प्रकाशवान बन जैसा विद्यु त प्रकाशवान है। विद्यु त तेरे एक-एक कण में है। तू इसको सींच और वाणी में धारण कर। उस विद्युत को तू आत्मा में धारण कर और उसका प्रकाश कर। तेरे प्रकाश में संसार का कल्याण होगा। हे विद्युत मण्डल तू कल्याण करने वाला है। जिस प्रकार वैज्ञानिक जलों से वायु विद्यु त को सींचते हैं, इसी प्रकार तू भी विद्युत को सींचने वाला बन। प्रत्येक इन्द्रियों में जब तुझे उसका प्रकाश प्रतीत होने लगेगा तो संसार में तेरा प्रकाश होगा। तू वास्तव में विद्यु त है।

मैं यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में उच्चारण कर रहा था कि यज्ञोपवीत तू परम पवित्र है। परमात्मा ने यह दिया है। परमात्मा ने क्यों दिया है ? जब वेद ईश्वरीय ज्ञान कहा जाता है तो परमात्मा ने वेदों में यज्ञोपवीत का मन्त्र क्यों दिया जिससे मनुष्य धारण करता है ? हमारे युग के आचार्यों ने इस सम्बन्ध में कहा है कि परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में इस यज्ञोपवीत को इस लिए धारण कराया है कि जिससे हे आत्मा तू मुझे शांत न कर दे और तेरा कल्याण न हो सके। जैसे मुनिवरो ! उस परमपिता परमात्मा ने बालक के द्वारा एक क्षु धा का प्रतीक बनाया है और उस क्षुधा के कारण वह बालक माता को तीन काल में भी शांत नहीं कर सकता। इसी प्रकार परम पवित्र यज्ञोपवीत को धारण करने वाला परमात्मा को त्रिकाल में भी शांत नहीं करता और उस प्रभु के गुण-गान गाता ही रहता है। तो मुनिवरो ! आज हमें उस प्रभु का गुण-गान गाना है और यज्ञोपवीत को धारण करना है जिससे हम ऊंचे बन जाते हैं, प्रकृति को त्यागते हैं और आत्मा को उस परमात्मा की गोद में ले जासकते हैं इस विज्ञान से। हमारे द्वारा यह विज्ञान होना चाहिए।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय मुझसे कहा था कि पूर्व का ऋषि मण्डल कुछ नहीं जानता था। वह वनों में रहते थे। उन्हें व्यवहार का कोई ज्ञान न था। परन्तु मैंने यह वाक्य कई समय कहा है कि यदि बेटा ! वह व्यवहार का ज्ञान करते तो वह संसार में ऋषि नहीं कहला सकते थे। उन्हें व्यव-

हार का ज्ञान था परन्तु ऐसे नहीं जैसे संसार के रहने वालों को होता है। मुझे त्रेता काल की वार्ता कंठ में आ गई है। जिस समय महाराजा श्रृंगी ऋषि को कजली वनों से अयोध्या में पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए लाया गया तो उस समय वह १८८ वर्ष का ब्रह्मचारी था। परन्तु उसने सबके चरणों को स्पर्श किया, चाहे माता थी, चाहे राजा था, चाहे सेवक था और उच्चारण किया था कि यह तो बड़ा ही सुन्दर देवलोक है। जहां ऐसे-ऐसे ऊंचे विचार वाले हों वह परमात्मा को तो तीन काल में भी शांत नहीं कर सकते। वह परमात्मा के गुण-गान गा कर वारम्बार परम पवित्र बना करते हैं। आज हमें वह विचार बनाने हैं। उस नम्रता को लाना है संसार में जिसको धारण करने से मनुष्य संसार से पार हो जाता है।

(महानन्द) तो क्या गुरुदेव। राजा को भी ऐसा होना चाहिए जैसा आप उच्चारण कर रहे हैं ?

बेटा ! राजा को शांति व नम्रता धारण करनी चाहिए। एक समय की वार्ता है कि महाराजा कुबेर ने अपने राज्य पुरोहित से पूछा कि महाराज मुझे कौन-सी मानवता व शांति को अपनाना है तो उस समय पुरोहित ने कहा था कि अरे ! तुम्हें उस मानवता और शान्ति को अपनाना है तो उस समय कि यदि तुम्हारे राष्ट्र पर कोई आक्रमण करे तो उसे शान्ति कहकर शांत करो परन्तु यह देखना है कि कौन-सी शांति होनी चाहिए। उसे भुजाओं की शांति नहीं चाहिए, उसे उसके चरणों में स्पर्श होने की शांति नहीं चाहिए। उसे तो वह शांति चाहिए जिससे उसका अभिमान शांत हो जाए। वह शांति का शस्त्र कौन-सा है जिससे अभिमान चूर-चूर हो सकता है। वह हैं अपना कुठार जिसको ले करके जैसा समय देखो वैसा बर्ताव करो। तुम शत्रु पर विजय पा सकते हो। हमारा वेद यह नहीं कहता कि तुम दूसरों के आधीन होकर विराजमान हो जाओ। हमारे वेद का आदेश तो जैसा महाराजा शिव माता पार्वती से कहा करते थे कि हे देवी ! यदि हमारे हिमालय पर हमारे कैलाश पर कोई आक्रमण कर दे तो क्या करना चाहिए। उस समय माता पार्वती कहा करती थी, "प्रभु अपने उन महान वैज्ञानिक शस्त्रों को धारण करना है, जिन शस्त्रों से इस कैलाश की रक्षा हो सके।"

हे मेरे ऋषि मण्डल मैं वार्ता तो जिज्ञासा की प्रगट कर रहा था परन्तु

राष्ट्र के वाक्य उच्चारण करने लगा। आज मेरा वह वाक्य नहीं था। मैं नम्रता का आदेश उच्चारण करने जा रहा था। तो मुनिवरो ! सदाचार के सम्बन्ध में एक ही वाक्य कहा है कि आज मानव को परम पवित्र यज्ञोपवीत को धारण करना है। मैं तो सब ही से प्रार्थना करता हूं कि हे मेरे प्यारे भद्र मण्डल ! तू अपने इस परम पवित्र विचार को राष्ट्र से घोषित करा कि प्रत्येक माता, प्रत्येक पिता अपने बालक को परम पवित्र यज्ञोपवीत को धारण कराने वाला हो। उसके विचारों में आचार्यों की प्रेरणा हो। वह आचार्य कौन से हों ? वह आचार्य पवित्र हो, ब्रह्मचारी हो, उसके विचार ऐसे ऊंचे हों कि वह उस बालक को अपने उदर में धारण करने वाला हो।

मेरे प्यारे महानन्द जी कहेंगे कि आचार्य बालक को अपने गर्भ में कैसे धारण कर सकता है ?

मुनिवरो ! वह धारण कर सकता है। देखो जब शिष्य यज्ञोपवीत को धारण करने के पश्चात् गुरू के द्वारा जाता है तो गुरू उसे गायत्री का उपदेश देता है और कहता है कि गायत्री माता है और जितने तेरे इन्द्रियों के विषय हैं इन्हें तू मुझे दे दे और मेरा जो वाक्य है मेरा जो आहार है उसे पान कर। हे पुत्र। तू आज माता के गर्भ से आया है पिता के गृह से आया है अब मैं तेरी माता भी हूं और पिता भी हूं। तू मुझे अपने अवगुण दे, अपनी चंचलता को दे, मैं अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से उन्हें समाप्त करूंगा और वह उपदेश दूंगा जैसे माता गर्भस्थल में वह ऊंचा आदेश देती है कि तुम यहां सदाचारी व ऋषि बन जाते हो। आज तू अपनी सब इन्द्रियों के विषयों को मुझे दे, तू केवल एक रूप को धारण कर और वह है प्रकाश। तो मुनिवरो ! जहां ऐसी शिक्षा दी जाती हो, जहां उस प्यारे पुत्र को, ब्रह्मचारी को केवल एक वेद की शिक्षा दी जाती हो, जिसे विद्या और अपनी संस्कृति से प्रेम हो और कोई ज्ञान न हो तो जानो वह ब्रह्मचारी आचार्य के गर्भ में है। वहां उसका पालन-पोषण उसी प्रकार हो रहा है जैसे माता के गर्भ में बालक के शरीर का पालन-पोषण होता है। आचार्य के गर्भस्थल में जाने के पश्चात् जहां माता के गर्भ में शरीर बनता है, वहां यहां बालक का जीवन बनता है। आज हमें ऋषि-मुनियों की प्रणाली को धारण करना है। आज हमें संसार को ऊंचा बनाना है। हमें शिव का पुजारी बनना है। हमें लिंग का पुजारी वनना है।

मेरे प्यारे महानन्द जी कहेंगे कि अब तो आप भी पाषाण लिंग की पूजा करने लगे। परन्तु मैंने इस लिंग की व्याख्या पूर्व के व्याख्यानों में की है। आज भी मैं कुछ संक्षेप से उस लिंग की व्याख्या करता चला जाऊं। लिंग नाम है ज्ञान का। आज संसार में हमें ज्ञान को धारण करके चलना है। हमारा द्रव्य भी लिंग है। यदि हमारे द्वारा द्रव्य हो तो वह भी यज्ञमय हो। हम द्रव्य का दुरुपयोग करने लगते हैं तो वह ही हमारा विनाश करा देता है। यदि उस लिंग का सदुपयोग करते हैं तो वह ही हमारा जीवन यज्ञमय बना देता है। आज हमें जीवन को ऊंचा बनाना है।

मुनिवरो! जैसे उपस्थ इन्द्रियों पर शासन करने वाला महान ब्रह्मचारी बन जाता है। इसी प्रकार आज हमें परम पवित्र को धारण करने वाला ब्रह्मचारी बनना है। उदार और पवित्र बनना है। उदारता और ब्रह्मचर्य से वीरता व तेज आता है। ऋषियों की प्रणाली कितनी ऊंची है जिससे हमारा कल्याण होता है। ऋषियों की प्रेरणा पा करके ही हमारा जीवन पवित्र बनता है।

एक समय मैंने अपने गुरुदेव से निर्णय कराया कि भगवन! हम अपना जीवन यज्ञमय बनाना चाहते हैं परन्तु यह यज्ञ है क्या? उस समय मेरे पूज्य गुरुदेव ने कहा कि यज्ञ वह पदार्थ है जो हमें स्वर्ग पहुंचाता है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि वह स्वर्ग क्या होता है? तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि स्वर्ग वह होता है जहां कोई कष्ट नहीं होता है! तब मैंने कहा कि यदि स्वर्ग में कोई कष्ट नहीं होता तो मुझे वह स्वर्ग नहीं चाहिए। जिस लोक में जाने से मनुष्य का मान ही मान होता है वह मुझे नहीं चाहिए। मुझे तो वह संसार चाहिये जिसमें मान भी हो और अपमान भी हो। मान और अपमान दोनों से मानव का जीवन पवित्र बनता है। मेरे गुरुदेव ने पूछा भाई। कैसे बनता है? तो मैंने गुरुदेव से कहा कि मैंने तो अपने मन का एक वाक्य मांगा है! मुझे तो निर्णय कराओ कैसे होता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने योग मुद्रा में जाकर बहुत सुन्दर उपदेश दिया और कहा कि वास्तव में हम या तो परमात्मा के गर्भ में रहें और यदि स्वर्ग में जाकर रहें तो उस लोक को चाहते हैं जहां मान और अपमान दोनों हों। क्योंकि जब मनुष्य का मान ही मान होता रहता है तो वह मान ही मान में इतना अभिमानी बन जाता है कि उसकी मानवता समाप्त हो जाती है। परन्तु जहां मान भी होता है और एक

स्थान में अपमान भी होता है तो उस समय उसे विचार आता है कि तुझे संसार में स्थिर रहना है। तुझे विचारवान रहना है। तेरे शत्रु भी हैं, मित्र भी हैं। आज तुझे वह बनना है कि अपने शत्रु को भी मित्र बनाना है। हे मेरे प्यारे ऋषि मंडल !हमें शत्रुओं कोभी अपना मित्र बनाना है कि जिससे हमारा कल्याण हो। जो मित्र शत्रु बन करके मित्र बना वह हमारा मान करने वाला है। वह हो सकता है किसी काल में हमारा मित्र न रहे। परन्तु जो शत्रु बन करके मित्र बनता है वह सदैवमित्र बन करके रहेगा। यह आज हमारे हृदय का एक वाक्य है। तो मेरे गुरुदेव ने मुझे बहुत कुछ शिक्षायें दीं और मैं उन शिक्षाओं से इस परिणाम पर पहुंचा कि मानव को परमात्मा के गुणगान गा करके संसार में स्थिर रहना है। जैसे कैलाश पर्वत पर नाना आपत्तियां आती हैं परन्तु सहन करता रहताहै। इसी प्रकार आज हमें परम पवित्र यज्ञोपवीत को धारण करके शांत और विचारवान बनना है। हमें संसार में शत्रुता को नहीं चुनना है। हमें मित्रता को लेना है।

तो बेटा ! आज का हमारा उपदेश क्या कह रहा था। मैं प्रभु से कह रहा था कि हे प्रभु ! मैंने सुना है तुमने अगस्त्य मुनि को संसार से पार किया है। प्रभु मैं किंचित बुद्धि बाला एक महात्रुटियों वाला तेरी शरण में आना चाहता हूं और चाहता हूं कि मेरा यह जीवन यज्ञमय हो। मेरा द्रव्य हो वह भी यज्ञमय हो। मेरे शरीर का एक-एक कण यज्ञ में प्रेरित हो। मैं एक सूक्ष्म से बन्धन में रहने वाला हूं प्रभु ! मैं तुम्हें तब ही जानूंगा जब तुम मुझे इस बन्धन से दूर करोगे। प्रभु ! मुझे पार करो मैं संसार सागर से पार होना चाहता हूं यज्ञ के द्वारा। वेद रूपी प्रकाश के द्वारा।

मैं पुनः पुनः याचना करता रहूंगा कि जिनको आज तुम अपना शत्रु बना रहे हो वह तुम्हारे शत्रु नहीं। एक समय में तुम्हारे मित्र भी बनेंगे। आज जिनको तुम आहार करते जा रहे हो एक समय वह आएगा कि वह तुम्हें आहार करेंगे। यदि मैं ज्ञान की गोद में जाऊंगा तो ज्ञान मुझे अपनाएगा। यदि मैं पाप करने लगूंगा तो एक समय वह आएगा कि जिनकी आज मैं हिंसा कर रहा हूं वह मेरी भी बलि दे सकते हैं। आज यदि मैं किसी प्राणी की रक्षा करूंगा तो एक समय वह आएगा कि वह प्राणी मेरी रक्षा करेगा। तो हे मेरे प्यारे ऋषि मंडल ! हे मेरे मानव मंडल ! हे मेरे भ्रातृ मंडल ! मैं पुनः से यह निवेदन कर रहा हूं, वाणी के वर्णन से नहीं, मैं अपनी आन्तरिक आत्मा से

यह वाक्य कह रहा हूं कि यदि तुम्हें संसार में परम पवित्र बनना है तो तुम संसार में किसी की हिंसा न करो। तुम अपने जीवन को यज्ञमय बना लो। परम पवित्र को धारण कर तुम परम पवित्र बनो।

आज तुम दूसरे जीवों का भक्षण न करो। आज यदि तुम जीवन चाहते हो, राष्ट्र की एकता चाहते हो, सदाचार चाहते हो तो तुम प्राणियों की रक्षा करो। बल से करो, वाणी से करो, हस्त से करो परन्तु रक्षा करो। यह जो तुम्हें शरीर दिया है यह दूसरों की रक्षा करने के लिए दिया है। यह दूसरों का वध करने के लिए नहीं। यह जो हमारे भुज हैं, हमारे अंग-अंग की रक्षा करते हैं। दूसरे प्राणियों की रक्षा करते हैं। यह हमारे द्वारा प्रतीक हैं और शिक्षा देते हैं कि प्रभु ने यह दूसरों की रक्षा करने के लिए दिए हैं। आज संसार में हमें अपने जीवन को ऊंचा, महान व विलक्षण परम पवित्र बनाना है। उन भुजों से, वाणी से, उपस्थ इन्द्रियों से और त्वचा से दूसरों की रक्षा करनी है। हमें दूसरों को नष्ट नहीं करना है। हमें तो हमारे द्वारा जो काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह शत्रु हैं उनको नष्ट करना है। हम इनका वध करेंगे तो हमारा जीवन महान बन जाएगा। आज हमें अहिंसा परमो धर्म का पालन करके ज्ञान के और वेद के प्रकाश में जाना है। यज्ञमय अपने जीवन को बनाना है। तो अब यह हमारा आदेश समाप्त होने जा रहा है।

महानन्द जी द्वारा यज्ञ की पूर्णाहुति पर शुभ आशीर्वाद

(१४ नवम्बर १९६३ को चतुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् विनय नगर में दोपहर को १२॥ बजे दिया हुआ प्रवचन)

ओ३म द्रवणम मम् अस्चति सुपुजा मनोमि यज्ञमानः।

(महानन्द) मेरे पूज्यगुरुदेव! भद्र मानव समाज! भद्र विद्वत मंडल! उस महान परम देव को अपने हृदय में धारण करता हुआ आज मैं कुछ उच्चारण करने जा रहा हूं। मेरे गुरुदेव ने मुझे नम्रता का पाठ पढ़ाया। मैंने यह संकल्प किया है कि मैं सदैव नम्र रहने का संकल्प करता हूं। यदि यह संसार अग्नि में जाए तो जाने दो परन्तु मैं नम्रता को धारण करने का संकल्प अवश्य लूंगा।

मैं सूक्ष्म शरीर के द्वारा कुछ भ्रमण किया करता हूं। आधुनिक काल का समाज मंडल तो यह कहेगा कि वह कैसा महानन्द है जो सूक्ष्म शरीर से भ्रमण करता है। वह तो कहेंगे कि यह सब कल्पित वाक्य है। जिन्होंने उस स्थिति को उस संकल्प को देखा ही नहीं वह तो कल्पित ही कहेंगे। परन्तु मुझे इस विवाद पर नहीं जाना है कि वह कल्पित कहें या न कहें। मुझे गुरुदेव ने संकल्प करा दिया है मुझे इस वाक्य पर नहीं जाना।

आज मेरी आत्मा बड़ी प्रसन्न है क्योंकि जिस इन्द्रप्रस्थ भूमि पर हमारे गुरुदेव की यह आकाशवाणी मेरे उस गुरुदेव के मृतलोकी शरीर में से जा रही है उस इन्द्रप्रस्थ भूमि पर चतुर्वेद ब्रह्म पारायण महायज्ञ की आज पूर्णाहुति हुई। मैं उस यज्ञशाला को देखने पहुंचा और मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब मैं अपने गुरुदेव की प्रशंसा करने लगूं और अन्य की निन्दा करने लगूं तो यह मुझे शोभा नहीं देता। हास्य... मैं अपने गुरुदेव के शरीर की उस चंचलता का वर्णन करूं तो यह भी शोभा नहीं देता। हास्य...परन्तु मैं यह अवश्य कहूंगा कि आज मुझे बड़ी प्रसन्नता है। आज ऐसे विद्वत मंडल ने

ऐसे महान समारोह में, मेरी प्यारी माताओं ने और प्यारे भद्र पुरुषों ने भाग लिया है मैं उनका बड़ा आभारी हूं। संसार में ऐसे समय में यदि ऐसे यज्ञ होते रहें तो बड़े ही शुभ संकल्प इस संसार के। मैं यह कहने नहीं आया कि तुम ऐसा करो। परन्तु यह अवश्य कहने आया हूं कि मेरे प्यारे भद्र मंडल ! जहां तुम इस नाना प्रकार के द्रव्य को पाप वृत्तियों में लगाते हो, अपने सिंगार और पोषण में लगाते हो ऐसे ही कुछ भाग लेकर के तुम यज्ञ भी किया करो, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा। राष्ट्र की एकता और सदाचार का प्रसार होगा।

यहां एक सप्ताह के समारोह में मैंने भी अपने वाक्य व्यक्त किये, मैं अपने गुरुदेव की तो प्रशंसा करने जा ही रहा हूं, जिनके इतने उदार विचित्र संकल्प सहित वाक्य होते हैं कि मनुष्य उनके वाक्यों को पान करके नम्र हो जाता है। मैं इनके वाक्यों को पाता हूं तो मैं नम्र हो जाता हूं इनके संकल्पों पर और उदारता पर।

आज मैं जानूंगा जहां यह एक सप्ताह से समारोह हो रहा है कितनी मेरी माताएं, कितने मेरे भद्र पुरुष, कितने मेरे विद्वत मण्डल यहां सदाचारी बनने की आहुति देने आए हैं ? जब तक सदाचारी बनने की आहुति न देंगे यज्ञमान बनने की आहुति न देंगे, शुभ संकल्प करने की आहुति न देंगे तब तक ऐसे समारोह से तुम्हारा लाभ न होगा। कल्याण तुम्हारा तब ही होगा जब विद्वानों के वाक्यों को तुम पान करो। श्रवण करने से ही या अंग स्पर्श से ही तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। कल्याण तब ही होगा जब तुम ऊंचा कर्म और संकल्प करोगे। हास्य……

मैं तो यह कहूंगा कि ऐसे यज्ञ सदैव होते रहें। राष्ट्र कल्याण के यज्ञ हों, परोपकार के यज्ञ हों, सामूहिक यज्ञ हों या राष्ट्र विजय के यज्ञ हों परन्तु होते रहें। शुभ संकल्पों से होते रहें।

इस यज्ञशाला में जो यज्ञमान बने हैं और अपने शुभ संकल्पों से इस शुभ कार्य को रचा है मैं उन सबको सुन्दर आशीर्वाद देने आया हूं। उनके हृदय में परमपिता परमात्मा ऐसी सुन्दर प्रेरणा सदैव देता रहे। विद्वत मण्डल भी देते रहें और विद्वान सदाचारी बन करके इस संसार को ऊंचा बनाने का संकल्प धारण करे।

में देखता हूं कि आज का संसार शाप में विश्वास नहीं करता। क्योंकि आज़ का संसार तार्किक है। परन्तु तार्किक होने के नाते यह मानना अनिवार्य होगा कि जब मानव सदैव सत्य उच्चारण करता है तो उसे शाप की स्थिति

मानना अनिवार्य है । जो सत्य धारण करता है उसे ज्ञान होता है कि इसने यह कर्म किया है और आत्मा के न्याय से उसे दण्ड मिलेगा और वह योगी अमोघ वाणी वाला वह ही उच्चारण कर देता है। इससे परमपिता परमात्मा का नियम समाप्त नहीं होता। जो शाप देते हैं उन्हें ज्ञान होता है कि इसके कर्म का यह दण्ड मिलेगा। वे उच्चारण कर देते हैं। परमपिता परमात्मा उसे अपने न्याय से उसे वही दण्ड दे देते हैं।

मेरे गुरुदेव को जब परम गुरु ब्रह्मा ने यह स्थिति दी तो गुरुजी द्वारा एक संकल्प कराया 'कि मम् अस्थते विश्वम् भवा' कि हे भगवन ! मुझे कहीं भेजो, कैसा ही शरीर मिल जाए । परन्तु किसी काल में मी मुझ में अभिमानी बनने की इच्छा न आये। आज मैं देखना चाहता हूं कि मेरे पूज्य गुरुदेव के द्वारा अभी तक तो वह स्थिति आई नहीं है। आगे की प्रभु जाने और भगवन के कर्म जानें।

हे मेरे बुद्धिमानों ! मेरे ब्राह्मण गण ! मेरे यज्ञमानों! मेरे परोपकारी भद्र मण्डल ! मैं तुम्हें यह कहने आया हूं कि तुम अपने हृदय में शुभ संकल्प धारण करो । प्रभु की याचना कर प्रभु की सहायता पाते रहो। बुद्धिमानों से प्रेरणा पाकर ऊंचा कर्म करें। जो मनुष्य संकल्प धारण करेंगे उनका जीवन पवित्र बनेगा। उनका जीवन सूर्य तक और बृहस्पति लोकों तक पहुंचेगा। जो यहां अपना द्रव्य अशुभ कर्म करने में शान्त करते चले जायेंगे वे जानो बारम्बार यहां आते रहेंगे और कष्ट भोगते रहेंगे । मैं तो केवल यह आशीर्वाद देना चाहता था कि ऐसे शुभ अवसरों पर अपने जीवन की आहुति देनी चाहिए, अपने विकल्पों की आहुति देनी चाहिए, शुभ कर्म करने की आहुति देती चाहिए, दुर्गुण त्यागने की आहुति देनी चाहिए।

आज मैं देखता हूं कि वह इन्द्रप्रस्थ भूमि है जहां महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूर्य यज्ञ किया था जिस यज्ञ में संसार के राजा महाराजा आज्ञा के अनुकूल आये थे। आज तुम्हें भी संसार में वह समय ला देना है। आज तुम्हारा वह समय आ जाना है जब तुम ऐसे यज्ञ इन्द्रप्रस्थ में करते ही रहोगे । राजसूय यज्ञ करोगे तो आज्ञा के अनुकूल राजा महाराजा नास्तिक से आस्तिक बनेंगे। यह समय तुम्हें लाना है। आज मेरे इस समाज में से कोई युधिष्ठर बनेगा। आज इस इन्द्रप्रस्थ में कोई अर्जुन भी अवश्य बनेगा। कोई भीम भी अवश्य बनेगा। आज इस इन्द्रप्रस्थ में भगवान कृष्ण भी सेवा करने के लिए आएंगे परन्तु उसके लिए, सदाचार के लिए यज्ञ समारोह करते रहो तो

अवश्य आएंगे। यह निश्चित है। प्रभु तुम्हारे ऊपर दयालु हो करके तुम्हारे राष्ट्र की रक्षा करेंगे। तुम्हारे जीवन की रक्षा करेंगे। तुम्हारी इस मातृभूमि और संस्कृति की रक्षा होगी।

मैं देखता हूं कि यहां मेरी माताएं, मेरा भद्र मण्डल अधिकतर दूसरे जीवों को भक्षण करके अपने प्राणों की रक्षा करते हैं। बहुत से प्राणी ऐसे हैं जो परमात्मा ने हमारे लाभ के लिए उत्पन्न किए हैं। हमारे द्वारा जो दुर्गन्धि हो जाती हैं उसे समेटने वाले प्राणी हैं उनको तुम अपने गृह में चट कर जाते हो। उनको चट न करो। उनको चटनी की तरह पान न कर जाओ। उनकी रक्षा करो जैसे वृक्ष तुम्हारी रक्षा करते हैं। जल तुम्हारी रक्षा करता है। वायु तुम्हारी रक्षा करती है। अग्नि तुम्हारी रक्षा करती है। बुद्धिमान तुम्हें सब कुछ दे करके तुम्हारे धर्म की मर्यादा को ऊंचा बनाते हैं। आज तुम्हें चटकीले पदार्थों का पान करना है तो सद्‌गुण, ऊंचे गुणों को चट करो और जो दुर्गन्धि-दायक है उन्हें पृथक करो। आज दूसरे प्राणियों की रक्षा करनी है।

मैं शुभ संकल्पों से तुम सबको आशीर्वाद देने आया हूं। मैं गुरुजी के आगे आशीर्वाद देने के योग्य तो क्या हूं परन्तु तब भी मैं यह धन्यवाद देने अवश्य आया हूं कि यदि ऐसे-ऐसे शुभ समारोह, यज्ञ, राष्ट्र एकता तथा सदाचार के उपदेश, ऐसे-ऐसे गम्भीर मेरे गुरुदेव के आदेश इस संसार का व्यक्ति पान करता रहेगा तो यह संसार आर्य बनकर रहेगा। आज रूढ़ीवादी से आर्य नहीं बनेगा। यह संसार तो नम्रता से आर्य बनेगा और बनकर रहेगा। परन्तु कब ? जब तुम यज्ञ वेदी पर पहुंचोगे, अपने सदाचार की वेदी पर पहुंचोगे। अपने आहार और व्यवहारों की वेदी पर पहुंचोगे। जब तुम आर्य बनोगे तो तुम्हारी संस्कृति की रक्षा होगी।

आज प्रत्येक बुद्धिमान कहता है कि संस्कृति समाप्त होती जा रही है ? परन्तु क्यों समाप्त होती जा रही है ? न तो राष्ट्र का कोई दोष है, न राजा का ही कोई दोष है। हे प्रजा ! यह जो भी दोष है तेरा है। क्योंकि जिनकी तुझे रक्षा करनी थी उनकी रक्षा नहींकरता और जिनको तुझे महत्ता देनी थी उन्हें महत्ता नहीं देता। महत्ता देते हो तो किसको ? महत्ता देते हो रोगों को। आज तुम सदाचारी बनने वाले सदाचार को महत्ता क्यों नहीं देते। आज संस्कृति को मान्यता स्वयं दे सकते हो। जब तुम स्वयं दोगे तो राष्ट्र भी अवश्य सदाचारी बनेगा और आर्य बन करके तुम्हारी संस्कृति को अपनायेगा। क्या करें जब समाज ही ऐसा बन गया है, जब समाज में ही दूसरों की चटनी बना-

कर पान करने का अभ्यास हो गया है। अब कहते हैं 'संस्कृति, संस्कृति, ऋषि परम्परा, यज्ञोपवितम्।' परन्तु कहना चाहिए, रसना की पूर्ति।'

आज महान आत्माओं की वाणी क्या कहती है उसे देखो और विचार करो। आर्यों की वाणी को देखो और उन पर विचार करो। अब भी जो तुम्हारे मध्य में आर्य हैं उनके विचारों को पान करो और उन पर चलो।

मैं यह आदेश देने आया था कि ऐसे-ऐसे यज्ञ होते रहें। मैं भी प्रभु से याचना किया करूंगा कि ऐसे-ऐसे महा यज्ञ ऐसे-ऐसे भद्र कर्म करने वाले पुरुषों के हृदय में परमपिता परमात्मा बारम्बार शान्ति और बारम्बार शुभ कर्म करने के संकल्प उनमें आते रहें।

संस्कृति को ऊंचा बनाने के लिए तुम्हें सदाचार और यज्ञों को अपनाना ही पड़ेगा। यज्ञ ही हमारा जीवन है, यज्ञ ही हमारा राष्ट्र है, यज्ञ ही हमारी रक्षा करेगा। जब तुम यह विश्वास करोगे तो उस समय तुम्हारी रक्षा स्वतः होगी। यहां अब यज्ञों की प्रणाली समाप्त हो गई है। हे मेरे प्यारे भद्र संसार! मेरी प्यारी माताओं! जब यहां यज्ञों की प्रणाली और आर्यता सूक्ष्म हो गई थी उस समय यहां, राष्ट्र दूसरों के आधीन बन करके रहा। वह स्वराज्य की चेतावनी देखो जो तुम्हें आर्यों ने ही दी। आज से पूर्व काल में महर्षि शंकराचार्य चेतावनी देकर चले गए। उसके पश्चात् यहां महर्षि दयानन्द चेतावनी देकर चले गए। मैं तो चेतावनी देने योग्य नहीं। परन्तु यह चेतावनी देने जा रहा हूं कि आज तुम सब यथार्थ को यथार्थ मानो और मिथ्या को त्यागो। जो गम्भीर और योग का विषय हो उसे योगी बनकर के जानो और जिसका बुद्धिमानों से और तर्क से सम्बन्ध है उसे तर्क से जानो। जो राष्ट्र का सम्बन्ध हो उसे राष्ट्र की प्रणाली से जानो। जो यज्ञों का प्रकरण है उसे ब्रह्मा और यज्ञशाला में विराजमान हो करके ऋषि परम्परा से देखो। आज तुम सत्य को सत्य मानो। यहां जब ऐसी प्रणाली आ जाएगी, ऐसी विचित्रता आ जाएगी तो पुनः से सतयुग और द्वापर जैसी स्थिति आ जाएगी और पुनः से तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। मैं तो केवल इतना उच्चारण करने आया हूं कि संस्कृति को ऊंचा बनाना है। यदि तुम्हें आर्य बनना है, विचित्र बनना है तो अपने रूढ़िवाद को त्याग दो। वर्ण व्यवस्था से चलो तुम्हारा जीवन सदैव आनन्द-मय और समारोह में रहेगा।

— —

भौतिक तथा आध्यात्मिक यज्ञ की कल्पना

(दिनांक २० अक्तूबर १९६८ को जे-१०जोर बाग रोड
पर दिया हुआ प्रवचन)

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पुनः से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परा से कुछ मनोहर वेद मन्त्रों की ध्वनि के साथ हम अपनी वाणी के उदगार प्रकट किया करते हैं। क्योंकि हमारी वाणी का जो सम्बन्ध है उसका ही प्रकाशक स्वरूप है। जहां हम यह विचार विनिमय करते चले जाते हैं कि हमारी वाणी का जो सम्बन्ध वेद वाणी से ही नहीं है परन्तु प्रत्येक इन्द्रिय का सम्बग्ध उस प्रकाश से है। उसी प्रकाश से उसका मिलान है। क्योंकि यदि इन्द्रियों के समीप प्रकाश नहीं होता तो इन्द्रियों में गति किसी प्रकार आ ही नहीं सकती। इन्द्रियों में जो गति है, वह मेरे प्यारे उस देव की है जो देवताओं का भी महादेव कहलाया गया है। आज हम उस परमपिता परमात्मा का गुणगान गाते चले जाएं।

उस मेरे प्रभु ने इस मानव शरीर को रचा, इस ब्रह्माण्ड की रचना की। इस पृथ्वी में मानव गति को उत्पन्न कर दिया जिसमें नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति होती रहती है। खाद्य और खनिज पदार्थों की इसी के द्वारा उत्पत्ति होती रहती है। आज हम उस देव का कहां तक धन्यवाद कर सकते हैं। कहां तक उसकी महिमा का गुण गान गा सकते हैं। जो हमारे जीवन में एक महत्ता का दिग्दर्शन और प्रकाश देता रहता है। प्रत्येक इन्द्रिय में प्रकाश की प्रतिभा ओत-प्रोत हो करके अपना कार्य करने में सफल हो जाती है। इन्द्रियों का क्षेत्र एक विशालता में परिणत होता चला जाता है। प्रभु ने इस सर्वस्व ब्रह्माण्ड को यज्ञ वेदी के रूप में रचा। क्योंकि यज्ञ में जैसे होता जन आहुति देते रहते हैं, यजमान भी आहुति देता रहता है। इसी प्रकार इस संसार को क्रियाशील बनाने में नाना प्रकार के जो होता हैं, जल,

अग्नि, वायु हैं यह प्रभु के चुने हुए होता हैं, ये नित्य प्रति आहुति देते रहते हैं। परमाणुओं की आहुति देते रहते हैं। प्राणीमात्र का जीवन उन आहुतियों से प्रदीप्त होता है, प्रकाशमान होता है। इसी प्रकार हमें विचार विनिमय करना है कि प्रभु का जो दिया उत्तम मार्ग है उसको अपनाने में अपने विचारों को संकीर्ण नहीं बनाना चाहिए। लक्ष्मी अपना वहीं स्थान ग्रहण करती है जहां उसके पति का पूजन होता है। यदि पति का पूजन नहीं होगा तो वहां लक्ष्मी का कुछ नहीं बनेगा। क्योंकि लक्ष्मी का सदुपयोग करना यह मानव के लिये विशेष कर माना गया है।

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा देते चले जा रहे हैं, वायु मण्डल से भी मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि यह जो कल का आगे दिवस आ रहा है वह दीवाली का दिवस हमारे समीप आता चला जा रहा है। समय आता रहता है, जीवन की सिद्धांतों में विचारधारा बनती रहती है परन्तु जहां दीपावली 'दिया ब्रभे कृतिः दियाः' मानव का जीवन प्रकाशमय होता है। मानव के मन में एक महान क्रांति उत्पन्न होती है। एक नवीन क्रांति का मानव दिग्दर्शन करता है। आज जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि एक द्रव्यपति है परन्तु वह दुरुपयोग करता है। सदुपयोग नहीं करता 'यज्ञाः मह कृति' वह यज्ञ नहीं करता अनाथों की सेवा नहीं करता, केवल द्रव्य को एकत्रित करके अपने मान में परिणत होता चला जाता है तो उसका क्या बनेगा! वह समय बहुत निकट आने वाला है जब द्रव्य के दुरुपयोग करने वालों के विनाश का समय निकट आ जाता है। द्रव्य दुरुपयोग करना मानो खान-पान में और नाना कृतियों में, भोगों में परिणत कर देना यह मानव के लिए कोई सुन्दरता नहीं है। मेरे ऋषि ने तो ऐसा कहा है, आचार्यजनों ने तो ऐसा कहा है कि द्रव्य को एकत्रित करना मानव के लिए कोई ऊंचा वाक्य नहीं है। वेद का ऋषि तो कहता है कि उसका सदुपयोग करना, अपने जीवव का भी सदुपयोग करना, वाणी का, चक्षुओं का, घ्राण का, श्रोत्रों का, ग्रीवा का, उपस्थ का, त्वचा का जितना भी इन्द्रियों का सदुपयोग किया जाता है उतनी ही मानव में प्रतिभा जागृत होती चली जाती है।

मेरे भद्र पुरुषों! मैं यह उच्चारण करने नहीं आया कि द्रव्य नहीं होनी चाहिए। परन्तु द्रव्य के साथ मानव को अपनी मानवता समाप्त नहीं कर देनी चाहिए? यदि द्रव्य की लोलुपता में मानवता को नष्ट कर दिया तो उस द्रव्य

का क्या बनेगा ? एक समय वह आएगा कि यदि उसकी मानवता उसके समीप नहीं है, विचारधारा ऊंची नहीं है तो वह द्रव्य पृथ्वी के तुल्य होता चला जाएगा। मैंने अभी प्रकट किया था कि जहां पति का पूजन नहीं होगा वहां लक्ष्मी भी अपना अधिक समय तक स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि लक्ष्मी का कौन देवता है ? लक्ष्मी का यदि कोई पति है तो उसका धर्म कहलाया गया है। जहां धर्म और लक्ष्मी दोनों का पूजन होता है वहां नाना प्रकार की सम्पत्ति और संसार की सम्पदा होती है। परन्तु सम्पदा वहीं होती है जहां धर्म और लक्ष्मी दोनों का पूजन किया जाता है। अब विचार आता है कि पूजन कैसे करें ? मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे वर्णन कराते हुए भी कई समय कहा। मेरे पूज्य गुरुदेव भी मुझे स्मरण कराते रहते थे कि द्रव्य का सदुपयोग क्या है कि देवताओं को सर्वप्रथम हवि देना, लक्ष्मी का सदुपयोग माना गया है। क्या आज हम देवताओं को लक्ष्मी अर्पित करें ? कदापि भी नहीं। लक्ष्मी किसे कहते हैं ? द्रव्य नाम लक्ष्मी है और जितने भी पदार्थ हैं, वनस्पतियां हैं इनमें सबमें हमें द्रव्य की प्रतिभा प्रतीत होती है। आज हम अन्न के रूप में भी सामग्री बना सकते हैं, औषधियों की भी सामग्री बना सकते हैं, नाना रूपों में, विचारों के रूपों में भी हम विचारों की सामग्री बना सकते हैं, जिस सामग्री को बनाना चाहते हो उस सामग्री को बना करके तुम देवताओं को हवि देते चले जाओ। उससे पृथक तुम्हारे लिए कोई सदुपयोग नहीं है। देखो किसी मानव के द्वारा द्रव्य है, वह नाना प्रकार की वनस्पतितों को एकत्रित करता है और एकत्रित करके उन्हें अग्नि को अर्पित कर देता है, अग्नि देवताओं का दूत माना गया है, यह अग्नि सभी को ले करके जल अग्नि वायु को प्रसारण कर देता है क्योंकि अग्नि में प्रसारण शक्ति होती है। और जब उन्हीं वनस्पतियों के साथ यदि सुन्दर विचार होंगे, तो प्रसारण करने से सब देवताओं को प्राप्त हो जाती है।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो ! मैं तो यह कहा करता हूं कि हे यजमान ! जब तू अपने विचारों की आहुति देता है जहां शाकल्य होता है वहां विचारों का भी शाकल्य होता है, वहां त्रुटियों का भी शाकल्य होता है और उसे तू अग्नि के द्वारा अर्पित कर देता है और यह कहा करता है कि हे अग्नि ! तू मुझे हवि दे। मैं तुझे हवि देता हूं। तू मुझे सत मार्ग दे। मुनिवरो ! जब वह अग्नि पर अपने यह विचार देता है जो देवताओं का दूत है, अग्नि सब देवताओं पर कर देती है। वे जो देवता हैं वे हमारे मानव शरीर में कार्य करते हैं। मानो

कहीं अग्नि के रूप में हैं, कही जल के रूप में है, कहीं वायु के रूपों में, कहीं अन्तरिक्ष के रूपों में, कहीं सूर्य के रूप में, कहीं चन्द्रमा के रूप में, नाना प्रकार के नक्षत्रों के रूपों में भी हमारे मानव के शरीर में कार्यवाहक होते रहते हैं। तो ये जो देवता हैं, यह मानव शरीर सुचारू रूप से कार्य करते हैं और मानव की जो प्रवृत्ति है, मानव के जो विचार हैं वे देवता उसे बाह्य कर देते हैं कि तू इस कार्य को शुद्ध रूप से कर।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो! आज जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि देवताओं का सम्बन्ध मानव शरीर से माना गया है, आज हम मानव शरीर से ही नाना प्रकार की हवि देते हैं। वेद का आचार्य कहता है कि तू यज्ञशाला में यजमान बनना चाहता है तो सबसे प्रथम अपने जीवन को तपा लेना चाहिए। उसे कैसे तपा लेना चाहिए? मानो अपने विचारों को तपा लेना चाहिए। संकलन शक्ति से तपना चाहिए। उसके द्वारा संकल्प की ऐसी महान सत्ता होनी चाहिए कि उसके साथ-साथ उसकी मानवता में इतनी दृढ़ता और साहस होना चाहिए कि वह हवि देने के योग्य बन जाए। मानो वह 'ब्रह्मचर्याश्रमी ब्रह्मा कृति' ब्रह्मचर्य का भी पालन करता हुआ अग्नि की जिह्वा को धारण करता है। क्योंकि यज्ञ-शाला में अग्नि की कितनी प्रकार की जिव्हा होती हैं? उन जिह्वाओं का क्या-क्या स्वरूप होता है? यज्ञमान का जब भी मन चंचल हो उसी समय उसकी अग्नि की जिह्वा के साथ प्रवृत्ति होनी चाहिए। नेत्रों की दृष्टि होनी चाहिए क्योंकि वास्तव में जब सब ही होतागण अग्नि की जिह्वा को धारण करते हैं तो जो नेत्रों की तरंगें होती हैं, नेत्रों के जो संकलन होते हैं, नेत्रों के द्वारा जो धर्म और अधर्म की प्रवृत्तियां हैं मानो वह जिह्वा उनको निगल लेती है और निगल कर सभी देवताओं को अर्पित कर देती है। तो हे यजमान! हे होता जन! तू ऊंचा बन और कैसा ऊंचा बन? तू पुरोहित के आधीन अपना कार्य कर। पुरोहित कौन होता है? जो तेरे हित का हो। पुरोहित उसे नहीं कहते जो पुरोहित हो करके अपने यजमान को नाना प्रकार की विडम्बना में ले जाए। वास्तव में हमारे यहां सबसे प्रथम कोई पुरोहित है तो उसे परमात्मा कहते हैं। क्योंकि वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह सर्व धर्मों का स्वामी है। जिसको धर्म स्वरूप कहा गया है। वह जो प्यारा प्रभु है उसके द्वारा जो प्रतिभा समाई हुई है, विराजमान हो रही है उसी प्रतिभा के साथ-साथ हम उसे अपना पुरोहित स्वीकार करें। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह वास्तव में

हित को चाहने वाला है, हित करने वाला है। मानव का यदि कोई हितकारी है तो वह जो यथार्थ में पुरोहित है उसका नाम प्रभु माना गया है। चैतन्य देव माना गया है जो प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या के हित के लिए केवल कल्याण की कल्पना किया करता है। आज पुरोहित को अपना महान देव चुनें। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह हमारे मानव के कल्याण के लिए सदैव प्रतिभा को देता रहता है। हमें अपने उस महान देव की याचना करते हुए और यहां भी यज्ञशाला में ऐसा बुद्धिमान पुरोहित चुनना चाहिए जिस पुरोहित के हृदय में पापाचार न हो। केवल धर्मज्ञ और मानवीय दृष्टि से उस मानव का जीवन इस साधारण प्राणियों से उन्नत हुआ हो। ऐसे प्राणी को हम अपना पुरोहित चुनते हैं। वह पुरोहित यज्ञशाला में यजमान को चुनता है, ब्रह्मा को चुनता है। 'वह ब्रह्मा ब्रह्मः अश्वन्ति ब्रह्मा' वह जो ब्रह्मा है यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाला उसकी वाणी में माधुर्य, धार्मिकता और ओज की प्रतिभा होनी चाहिए उसकी वाणी में कटुता का व्यवहार नहीं होना चाहिए। क्योंकि उस ब्रह्मा की जो कटुता है वह कटुता यज्ञशाला में यज्ञमान के प्रति होताओं के प्रति जो हिंसाजनक मानव की प्रवृत्तियां होती हैं, ब्रह्मा की होती है यह न जाना जाए कि मैं मानो इनकी हिंसा कर रहा हूं। अरे मानव! वह हिंसा उनकी हिंसा, होताओं की हिंसा, यजमान की हिंसा वह उस ब्रह्मा को उस वेदपाठी को स्वयं वह हिंसा उस मानव को निगलती चली जाती है।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो! जब यज्ञशाला में ब्रह्मा होता, उद्गाता यदि उसके द्वारा द्रव्य की लोलुपता होती है, द्रव्य की प्रवृत्ति बन जाती है तो जानो कि उसका जो हृदय है, अन्तःकरण है वह संकीर्णता से ओत-प्रोत हो जाता है, उसकी जो विचारधारा है वह देवताओं के समीप जाती है। हे मानव! वह द्रव्य की प्रवृत्ति किसी को नहीं खाती। परन्तु वह जो तेरा आत्मिक बल है उसको निगलती चली जाती है और एक समय वह आता है कि द्रव्य की लोलुपता में हे ब्रह्मा! हे होताजनो! हे उद्गाताओ! वह द्रव्य की लोलुपता स्वयं तुम्हें यज्ञशाला में संकीर्ण बना देती है, आत्मा के बल को ऐसे शोषण कर लेती है जैसे ग्रीष्म की सुन्दर ऋतु में सूर्य की किरणें जल को अपने में शोषण कर लिया करती है। यहां महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बड़े सुन्दर शब्दार्थों में कहा है कि 'यज्ञाम् ध्रुवाः ब्रह्मः यज्ञम् ब्रह्म व्याप्नोति नाभ्याम् ऋषवन्ते रुद्राः' वेद का आचार्य कहता है, महर्षि ने कहा कि यदि आज हम संसार की नाभि को दृष्टिपात करना चाहते हैं तो वह यज्ञ वेदी है और वह

यज्ञ वेदी क्या है ? जब ब्रह्मा के विचारों का और नाना प्रकार के पदार्थों का, वेद मन्त्रों के विचारों का एक समावेश हो जाता है तो वह एक प्रकार से ब्रह्माण्ड की नाभि मानी गई है। आज हम उस नाभि को विचारने वाले बनें जिससे हमारे मानसिक जीवन में एक महान प्रतिभा ओत-प्रोत होती चली जाएं।

मेरे प्यारे भद्र पुरुष ! आज हम वाक्य उच्चापण करते-करते बहुत दूर चले गए। वाक्य यह प्रारम्भ करना था कि यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाले 'यज्ञमान प्रभा कृति' जो मानव अपने द्रव्य का सदुपयोग करता है, देवताओं को अर्पित करता है, यज्ञशाला में अर्पित कर देता है वह बड़ा सौभाग्यशाली प्राणी होता है संसार में। उस मानव के लिए एक ऊंचा स्थान प्राप्त हो जाता है, परन्तु जो लक्ष्मी को नाना प्रकार के दुर्गुन्धों में, मादक वस्तुओं में नष्ट करता चला जाता है और उसे कर्तव्यवाद में नहीं लाता तो उस मानव की प्रतिभा नष्ट-भ्रष्ट हो जाया करती है। हम यजमान की प्रतिभा के लिए सदैव याचना करते रहते हैं और यह कहा करते हैं कि हे यजमान ! तू संसार में प्रतिभाशाली बन। कैसी तेरी प्रतिभा होनी चाहिए ? तेरा प्रकाश तेरे मन की शुद्धता तक रहना चाहिए। जब तेरे मन में शुद्ध वातावरण होगा, मानवीय संकलन ऊंचा होगा तब यह प्रसारण शक्ति, व्यापकता और धर्म तेरे निकट होगा और वह जो धर्म है उस लक्ष्मी के साथ उसका समावेश हो करके वही लक्ष्मी धर्म में प्रवृत्त कराएगी।

हमारे यहां यह परम्परा मानी गई है कि जब गुरु-आचार्य के समीप शिष्य जाता है तो उस समय तीन समिधा ले जाता है। वह कहता है कि हे आचार्य ! मैं तीन समिधा लेकर के आपके द्वार आया हूं। जब मैं यजमान बनकर के यज्ञशाला के समीप जाता हूं, होता बन करके उस समय भी मैं तीन समिधा लेकर के अग्नि के समीप जाता हूं इसी प्रकार भगवन ! मैं आपको भी अग्निस्वरूप ही धारण कर चुका हूं। मेरे मन में संकल्प हो चुका है कि आप मेरे अग्नि देवता हैं यज्ञस्वरूप हैं। प्रभु ! मेरे जो तीन प्रकार के पाप मन वचन और कर्म से मैं करता हूं उन्हें तीन समिधाओं के द्वारा दग्ध कर दीजिए। तो मुनिबरो ! जब महाराजा इन्द्र इन तीन समिधाओं को लेकर पहुंचे तो प्रजापति से यही कहा कि मेरे जो नाना प्रकार के पापाचार हैं उनको दग्ध कर दीजिए। तो एक सौ वर्ष की तपस्या करने के पश्चात् उन्होंने एक उपदेश दिया था कि इस आत्मा को जानने का प्रयास करो। यह जो आत्मा

है यह जो ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान स्वरूप होने के नाते नाना प्रकार की प्रवृत्तियां हैं जो तुम्हें सुषुप्ति अवस्था में, स्वप्न अवस्था में जागृत अवस्था में बाह्य जगत् को दृष्टिपात करते हो, उनको समेट लो, इन्दियों को समेट करके मन में स्थिर कर दो और मन को बुद्धि में स्थित कर दो और मन को अन्तःकरण में स्थित कर दो। मन बुद्धि, चित्त और अहंकार का नाम अन्तःकरण कहलाया गया है। जब सब प्रवृत्तियां चित्त में लय हो जाती हैं और चित्त में जो सामग्री एकत्रित हो गई है उसकी बेटा ! ज्ञान रूपी अग्नि जो आत्मा स्वरूप है उसमें आहुति देना है और आहुति देकर के प्रभु से मिलान करना है। वह मानव का आन्तरिक यज्ञ कहलाया गया है। आज हमें इस यज्ञ को करना है। जिस यज्ञ के करने से हमारे मन की प्रवृत्तियां विशाल बनती हैं। हम संकीर्णता में नहीं जाते और उस स्थान पर चले जाते हैं जहां हमारे महान् ऋषिवर ब्रह्मा आदि पहुंच चुके हैं। उसके लिए हमें सुन्दर कल्पना करनी है।

आज हम यहां आन्तरिक यज्ञ कर सकते हैं। एक विचारों का यज्ञ होता है। विचारों क यज्ञ कैसे होता है ? हम अपने विचारों को बनाते हैं, अपने विचारों का शोधन करते हैं। किसी समाज में जाकर के, किसी महापुरुष के सम्पर्क में जा करके, किसी स्थान में जा करके, विचारों में सुन्दरता लाते हैं। विचारों में हिंसा नहीं रहने देते, अहिंसा परमोधर्म का पालन करने में तत्पर हो जाते हैं। उन विचारों की सामग्री बनाते हैं। वह जो विचार रूपी यज्ञ वेदी है वह क्या है : सतमहापुरुषों का सत्संग। सतमहापुरुषों की प्रवृतियां, उनकी धाराएं, उनके मध्य में उन विचारों को व्यक्त कर दो। विचारों से ही वह महापुरुष तुम्हें अपने विचारों को देकर के शोधन कर दिया करते हैं। वह एक प्रकार की यज्ञ वेदी है जहां महापुरुषों का समूह हो, अपने जो विचार हैं उनमें जहां संशोधन किया जाता है वह एक प्रकार की विचारों की वेदी कहलाई गई है और वह जो विचारों की वेदी है, उस सुन्दर यज्ञशाला में जिस का सम्बन्ध भी ज्ञान रूपी अग्नि से है और ज्ञानरूपी अग्नि से जब मानव अपनी प्रवृत्तियों को स्वाहा कर देता है उस समय उस मानव के जीवन में एक महान प्रतिभा छा जाती है और प्रतिभा उस मानव की ध्रुव गति नहीं होने देती ऊर्ध्वा गति बना करके विचारों में व्यापकता, प्रसारणता और आकुंचन यह सब प्रकृति के गुण, आकर, प्रकृति के कण-कण को जान करके वह महान बन जाता है और अपना प्रदर्शन करके इस संसार सागर से वह मानव पार हो जाता है।

हमारे यहां कई प्रकार के यज्ञ होते हैं। विचारों का यज्ञ होता है, आन्त-

रिक यज्ञ होता है और नाना संकल्प वाले यज्ञ होते हैं और उनमें भी नाना प्रकार के भेद हैं। उनमें गो मेध नाम का यज्ञ है, अजामेध नाम का यज्ञ है अश्वमेध नाम का यज्ञ है जिनका वर्णन हम कल प्रकट कर सकेंगे। आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय कि हम मन, वचन और कर्म को ऊंचा बनाएं। इनमें पाप वासना न आने दें। यही हमारा जीवन है। इसी में हमारे जीवन की एक महान प्रतिभा है, एक महान धारा है। उसको अपनाने में हम सदैव तत्पर होते चले जाएं। इसी से हमारे जीवन का उत्थान होगा। द्रव्य भी कई प्रकार का होता है। एक द्रव्य तो लक्ष्मी का होता है, दूसरा विद्या का होता है और तीसरी सम्पदा शारीरिक बल की होती है। न तो बुद्धि का दुरुपयोग होने दो, न बल का दुरुपयोग होना चाहिए और न लक्ष्मी का दुरुपयोग होना चाहिये। जब तीनों का दुरुपयोग नहीं होगा तो मानव जीवन में मानवता के विशेष अंकुर ओत-प्रोत होते चले जाएंगे।

मानव को परम पिता परमात्मा ने उसके संस्कारों में बुद्धि दी है और बुद्धि का दुरुपयोग करता है, बुद्धि के द्वारा ऐसे अनुचित कार्य करता है कि वह साधारण प्राणियों को कुदृष्टिपात करता है तो वह जो बुद्धि का दुरुपयोग है उसे नहीं करना चाहिये। बुद्धि का कार्य यह है कि यदि परमात्मा ने बुद्धि दी है, दैविक सम्पदा है तो उसमें स्वयं को ऊंचा बनना है, स्वयं को बुद्धिमान रहना है और दूसरों को बुद्धिमान बनाना है। यह बुद्धि का सदुपयोग कहलाया जाता है। यदि बुद्धि हमारे द्वारा है और बुद्धि का दुरुपयोग है और आज पद की लोलुपता में, पद के आंगन में साधारण प्राणियों को अपने पगों के नीचे दबाना चाहते हैं और ऊंचा बनाना चाहते हैं तो यह परमात्मा की दृष्टि में और धर्म की दृष्टि में यह बुद्धि का दुरुपयोग कहलाया गया है। इसी प्रकार यदि मानव के समीप शारीरिक बल है और शारीरिक बल से नाना प्रकार के अनुचित कार्य करता रहता है, न तो चरित्र का ही विचार रहता है और किसी प्राणी को अपने भुजबल से वह नष्ट करने की प्रवृत्ति उसमें आती है यह प्रवृत्ति नहीं आनी चाहिये। यह उसका दुरुपयोग है। आज जिन कारणों से उसको प्रभु की सम्पदा वह बल प्राप्त हुआ है उस बल का दूसरों को उपदेश देना स्वयं बलवान बनना, स्वयं अपने स्तर से नीचे न जाना और आगे चल करके जब वह प्राणी चलता है तो उसके जीवन में एक महान प्रतिभा ओत-प्रोत हो करके उसके बल का सदुपयोग माना गया है।

इसी प्रकार मैंने द्रव्य की चर्चाएं की है। द्रव्य का भी सदुपयोग करना है। द्रव्य परमात्मा ने दिया है। पुरुषार्थ का फल है। स्वयं को द्रव्यपति बनना है, दूसरे अनाथों की सेवा करना, यज्ञ इत्यादि करना और भी नाना कार्य करना जितना भी हम परोपकार स्वीकार करते हैं इसी सबका नाम यज्ञ स्वरूप माना गया है। आज का वाक्य कि आज हम किसी वस्तु का दुरुपयोग न होने दें। स्वयं उसके अधिकारी बनें, विचारशील बनें, और जो इनको व्यर्थ में ही समाप्त कर देता है वह इनका अधिकारी नहीं होता। इसलिए प्रभु का चिंतन करते हुए, धर्म को जानते हुए कि धर्म के साथ लक्ष्मी है धर्म के साथ बुद्धि है, धर्म के साथ बल है, यदि इन तीनों के साथ में धर्म नहीं है तो इनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम अपने जीवन को यज्ञस्वरूप बनाएं और प्रतिभाशाली बनाकर के यह जो प्रभु का रचाया हुआ ब्रह्माण्ड है, अलौकिक ब्रह्माण्ड है, अलौकिक ही प्रभु है हमें उसकी महिमा का गुण गान गाना, प्रभु का चिन्तन करना, इससे हमारा जीवन ऊंचा बनेगा हम समाज के जीवन को ऊंचा बना सकेंगे। अब वेदों का पाठ होगा। शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे। आज का वाक्त समाप्त।

(महानंद जी) धन्य हो! गुरुदेव! वाक्य तो बहुत सुन्दर परन्तु समय समय की सूक्ष्मता (हास्य)।

बेटा! कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल होंगी।

(महानन्द जी) अच्छा भगवन! तो भगवन! कुछ सूक्ष्म-सा समय प्रदान कर देना।

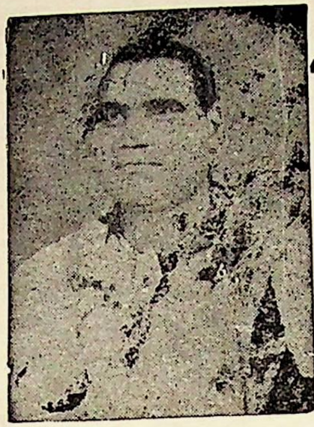
अच्छा बेटा! कल का कल देखा जाएगा। तो मुनिवरो! आज का वाक्त समाप्त हो गया। समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे।

— —

मुद्रक : राजू प्रिंटर्स, १३३, पुरानी अनारकली, दिल्ली-५१

है यह
तियां
जगत्
में सि
में सि
लाय
साम
है उ
मान
जिस

वि
हो
है
धा
पुर
प्र
ज
है
भ
कं
ज
व
ठ



—-प्रवचनकार—

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज का जन्म सितम्बर १९४१ में ग्राम खुर्रमपुर सलीमाबाद, समीप मुरादनगर, जिला गाजियाबाद में एक निर्धन परिवार में हुआ था। गरीबी के कारण शिक्षाविहीन रहकर गांव में यह बचपन से ही छोटे-मोटे काम करते रहे। छोटी आयु से ही जब सीधे लेट जाते तो इनके प्रवचन प्रारम्भ हो जाते। अतः चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक ग्रामीण जनता के मनोरंजन का साधन बने रहे। पन्द्रह वर्ष के बाद इन्होंने गृह त्याग दिया और घूमते-घामते बरनावा पहुंच गए जहां इनके बहुत प्रवचन हुए। कुछ समय के बाद इनकी चर्चा दिल्ली भी पहुंच गई, और इनको दिल्ली लाया गया और तब से लगातार इनके प्रवचन वैदिक अनुसन्धान समिति टेप करके प्रकाशित कर रही है।

जैसा कि ब्रह्मचारी जी ने अपने प्रवचनों में कहा है आप पूर्वजन्म के शृंगी ऋषि (जिन्होंने राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ रचाया था) हैं और बिल्कुल अशिक्षित होते हुए भी जब सीधे लेट जाते हैं तो कुछ ही क्षणों में पुराने संस्कार जागृत हो जाते हैं तथा अद्वितीय एवं अनुपम शैली में वैदिक अमृत वर्षा करके जनता को आह्लादित कर देते हैं। इनके प्रवचन प्राचीन ऋषियों जैसी पद्धति में अपनी विशिष्टता, श्रेष्ठता, रोचकता आदि आकर्षण से युक्त, सीधे आत्मा और हृदय को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी अलङ्कारिक गुत्थियां जिनको आज के युग में अविश्वसनीय माना जाता रहा है जैसे कि हनुमान जी ने बाल्यावस्था में सूर्य को मुख में धारण कर लिया, कुम्भकरण ६-६ मास तक सोता था आदि-आदि बातों को बहुत ही बुद्धिसङ्गत तथा हृदयग्राही व्याख्या दी है और बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों का वास्तविक स्वरूप बतलाया है।

हम बड़े ही सौभाग्यशाली है कि ऐसी महान् आत्मा हमारे मध्य उपस्थित है। जनता को इनसे एवं इनके साहित्य से अधिकाधिक लाभ उठाकर अपने-अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहिए।

नई दिल्ली | वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि०)